सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 43, अंक : 5
अगस्त – 2010

श्री सिद्धकृपा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति–स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

γ γ γ

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात् न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

γ γ γ

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

γ γ γ

अवशेन्दिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रिया विना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं हैं उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष: 43 अंक : 5

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न सहस्त्रमिषों
हरिवो गूर्ततमाः। सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

अगस्त, 2010

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 12
3. अष्टाङ्ग योग –प्रो. ऋषिराम शर्मा 19
4. मक्ति की उपयोगिता –रामरतन तिवारी 22
5. योग में प्रणव (ॐकार) महिमा –डा. जे.पी. शर्मा 24
6. श्री गीतामृत–पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 30
7. आदरणीय श्री खड्डर जी पर कृपा –केशवदेव उपाध्याय 32
8. गुरु जी कर दो बेड़ा पार –जगदीश राए बंसल 40

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

भगवान श्रीकृष्ण और उनका योग-ऐश्वर्य

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

नित्य वंदनीय भगवान श्रीकृष्ण इस धराधाम पर परात्पर सत्ता की लोकरक्षण, लोकपालन और लोकरंजन की महाशक्तियों को लेकर परमपुरुष के रूप में अवतरित हुए थे। प्रतिवर्ष भादपद कृष्णाष्टमी को हम उनका प्राकट्य दिवस उनकी जयन्ती के रूप में मना कर कृतार्थ हुआ करते हैं। धर्मसंस्थापन और अधर्म के विनाश के लिए वे जिन ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा कर गये हैं, उनको तथा उनके अद्‌भुत योग-ऐश्वर्यों को पूज्य श्री गुरुदेवजी ने अपने इस लेख में उजागर करने का प्रयास किया है। हम उनके योग-ऐश्वर्य भरे चारु चरित्र से कुछ सीख सकें, यही उनके इस सुन्दरतम् लेख का अभिप्राय है। तथा इस सत्य का सप्रमाण अनुमोदन भी उन्होंने किया है कि वे पूर्णावतार थे और परात्पर सत्ता की अतिशय सामर्थ्य अपने में संजोये हुए थे।

– सं. स.

जगदात्मा अखिल लोक-पावन भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में श्रीमद्‌भागवत् महापुराण तथा अन्यान्य पुराणों में जो कुछ वर्णन पढ़ने को मिलता है, उससे उनके परात्पर होने का स्पष्ट संकेत मिलता है।

श्रीमद्‌भागवत् का उपाख्यान है कि जब श्री ब्रह्मा जी गौ रूप धारिणी पृथ्वी को उसकी पीड़ा निवारणार्थ अन्य देवताओं के साथ शेषशायी भगवान नारायण की सेवा में क्षीर सागर पर गये, तब वहाँ पहुंचकर पुरुष सूक्त द्वारा उन्होंने भगवान नारायण की स्तुति करना प्रारम्भ किया। तन्मयता से स्तुति करते-करते वे समाधिस्थ हो गये तथा समाधि अवस्था में ही उन्होंने भगवान नारायण का दिव्य सन्देश सुना। श्री ब्रह्मा जी ने समाधि अवस्था में सुने हुए भगवान के उस दिव्य संदेश को जो अव्यक्त रूप में था यथावत् अपने साथ गये सभी देवताओं को सुना दिया। उन्होंने कहा:-

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्यवेधास्त्रिदशानु वाच।
गौ पौरुषीं मे श्रुणुतामरः पुन-विधीयतामाशु तथैव का चिरम्।।
पुरैव पुंसावधृतौ धराज्वरो भवद्‌भिरंशैर्यदुषूप जन्यताम्।

स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकाल सत्तया क्षपयंश्चरेद् भुवि।।
वसुदेव गृहे साक्षात् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थ सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।।

–भागवत पुराण द्वितीय खण्ड

अर्थात्– 'हे देवगण! आप सब मेरी उस वाणी को सुनें जिसे मैंने समाधि अवस्था में सुना है। सुनकर तुम सब तद्नुसार ही करो। इसमें कुछ भी विलम्ब नहीं होना चाहिए। भगवान् – नारायण को पृथिवी के कष्ट का पहले ही से पता है। वे ईश्वरों के भी ईश्वर हैं अतः अपनी काल शक्ति के द्वारा पृथिवी का कष्ट–हरण करने के लिए जब तक वे धरा–धाम पर लीला करें तब तक तुम सब भी शीघ्र अपने–अपने अंशों के साथ यदुकुल में जन्म लेकर उनके लीला–चरित्रों में अपना सहयोग प्रदान करो। ब्रज में वसुदेव जी के घर में परात्पर भगवान प्रादुर्भूत होंगे। देव लोक की देवांगनायें भी वहीं जाकर जन्म लेलें।

भागवत महापुराण का यह उपरोक्त उद्धरण हमारे इस कथन और मान्यता की पुष्टि करता है कि जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण परात्पर पावन पुरुष के रूप में – इस धराधाम पर प्रादुर्भूत हुए थे।

माता देवकी ने भी उनके प्रकट होने पर जो स्तुति की थी वह भी हमारे इस कथन की पुष्टि करती है। यथा:–

यस्यांशांश भागेन विश्वोत्पत्ति–लयोदयाः भवन्ति किल विश्वात्म स्तं त्वाद्याहं गतिं गता।

अर्थात्– 'हे प्रभो! जिसके अंशा–अंश को धारण करके ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देव सृष्टि का पालन, पोषण और संहार करते हैं।'

इसी प्रकार से इन्द्र आदि के द्वारा की गई स्तुति भी श्रीकृष्ण के परात्पर पुरुष के रूप को पुष्ट करती है। अतः यह निर्विवाद मानना होगा कि भगवान् कृष्ण अनादि काल से रहने वाले महासिद्ध हैं।

योग–दर्शन में भगवान् पतंजलिदेव ने ईश्वर के लक्षण स्वरूप निम्न सूत्र प्रस्तुत किया है:–

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

–योगदर्शन 1–24

अर्थात् जो क्लेश कर्म और विपाकाशय से अछूता है वह पुरुष विशेष ईश्वर है।

भगवान् व्यासदेव ने इस सूत्र की व्याख्या में अपने विचार भी इस रूप में स्पष्ट किये हैं:–

यथामुक्तस्य पूर्वा बन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य, यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा

बन्धकोटिः सम्भाव्यतेनैवमीश्वरस्य, सतु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः इति।।

अर्थात् जो लोग तीन बन्धनों को काटकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं वे पहले बन्धन में हैं और जो योगी लोग प्रकृतिलीन हैं और अपने आपको कैवल्य पद में विलीन समझ रहे हैं वे बाद में पुनः बन्धकोटि के अन्दर आजायेंगे किंतु यह सारे के सारे ईश्वर के सदृश बिल्कुल नहीं होते। इसलिए वह पुरुष विशेष हमेशा मुक्त है और हमेशा ईश्वर है। उसका ऐश्वर्य सामात्स्य विनिर्मुक्त है। अतः अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य भी साम्यात्स्य विनिर्मुक्त है इसलिए उनका आदि महासिद्ध होना अनायास ही सिद्ध है।

भगवान श्रीकृष्ण को हम लीलावतार कहते हैं किंतु उनके जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ उनको एक सरल ऐश्वर्य सम्पन्न योगीराज का ही अवतार सिद्ध करती हैं। जन्म से लेकर स्वधामगमन तक उनकी जितनी भी लीलाएँ हुई हैं उन सभी में उनकी योग–शक्ति प्रकट होती हैं। उनका कारावास में जन्म लेना और जन्म भी एक अति अद्‌भुत घटनाक्रम ही कहा जा सकता है इस प्रकार से संसार में अन्य कोई बालक जन्म नहीं लिया करता। इसके अलावा विलक्षण ढंग से अपनी माता के सामने वे अपने दिव्य चतुर्भुज रूप से प्रगट हुए जैसा कि श्रीमद्‌भागवत् में लिखा है:–

तमद्‌भुतं बालकमम्बुजेक्षणं। चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।।
श्रो वत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं। पीताम्बरं सान्द्रपयोद सौभगम्।।
महार्हवैदूर्य किरीट कुण्डल। त्विषापरिष्वक्त सहस्त्र कुन्तलम्।।
उद्दामकाञ्चयङ्गद कंङ्कणादिभि। र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत।।

अर्थात् – वासुदेव जी ने देखा कि उनके सामने किरीट, कुण्डल एवं वर–माला धारण किये हुए मेघ वर्ण सुन्दर श्याम शरीर वाला और अपनी चारों भुजाओं में शंख–चक्र–गदा–पद्‌म धारण किए हुए एक सुन्दर बालक खड़ा है। इसी प्रकार से दवेकी ने भी उनके इस रूप को देखा और उस अद्‌भुत रूप को देखकर वे उस रूपक तेज को सहन न कर सकीं और उन्होंने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि हे प्रभो! इस धारण ध्यान के लिए मंगलमय जो आपको दिव्य चतुर्भुज रूप है वह हम हाड़ मास चमड़े के शरीर धारण करने वाले साधारण मनुष्य–लोक के जीव इसे देखने के अधिकारी नहीं हैं इस समय आपने मेरे से जन्म लेने का अभिनय किया है अतः अपने इस अलौकिक दिव्य रूप तेज को छिपाकर साधारण मनुष्य रूप में ही मेरे सामने प्रगट हुए। अपनी माता देवकी को इस प्रकार भयभीत देखकर जगदात्मा अपने उस दिव्य चतुर्भुज रूप से अन्तर्हित होकर उसके सामने अपनी योगमाया से बालक के रूप में प्रगट हो गये। यों अपने अद्‌भुत दिव्य चतुर्भुज रूप का माता के सामने प्रगट करना और फिर उसको छिपा लेना यह उनकी योग–शक्ति का अद्‌भुत प्रभाव था। ऐसे एक साधक सिद्ध योगी के लिए यह क्रिया अपनी साधना के बल पर आधारित रहती है, पर उसको कठोर संयम के द्वारा ही ऐसा करना पड़ेगा। किंतु आदि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए ऐसा कर डालना न के

बराबर सहज कर्म ही था।

पातंजल योग–दर्शन एवं अन्तर्ध्यान क्रिया में भगवान पतंजलि जी अपने योग–सूत्र में बतलाते हैं–

कायरूप संयमात्तदग्राह्य शक्ति स्तम्भे चक्षु: प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम्।।

अर्थात् जिस समय योगी अपने संयम के बल से काया के रूप में अपने मन को संयमित करता है, उस समय उसके शरीर पर सर्वसाधारण की आँखों का प्रभाव नहीं पड़ सकता। चक्षु: प्रकाशासंयोग होने के कारण वह अपने आपको छिपा लेता है। यह साधना सिद्ध योगी को अपने योगसिद्ध ऐश्वर्य के बल पर संयम के बल से करनी पड़ेगी। किंतु महायोगी ईश्वर सिद्धों के महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए यह अद्‌भुत कर्म कुछ भी अर्थ नहीं रखता। उन्होंने अपने माता–पिता के सामने अपने दिव्य चतुर्भुज स्वरूप को प्रगट करके दिखला भी दिया और तत्काल उनके विनय करने पर अपने उस स्वरूप को छिपा भी लिया। फिर सहज काय निर्माण शक्ति से अपने आपको बालक रूप में प्रगट कर दिया। यह उन महा योगेश्वर के योग–ऐश्वर्य की पहली झलक थी, जो देवकी वसुदेव ने अपनी आँखों से देखी। इसके बाद उन्होंने अपने योग बल बाल–लीला आरम्भ की। इस कथा–प्रसंग को प्राय: सभी कृष्ण–भक्त जानते ही होंगे। ऐसा मेरा विश्वास है।

योगेश्वर का सहज शुभ संकल्प

कंस के कारागार से श्री वसुदेव जी बालरूप भगवान को गोकुल पहुंचा आये थे। कंस के कारागार के दरवाजों का अपने आप खुल जाना और वसुदेव जी के लौट आने पर उसी तरह पुन: बन्द हो जाना यह उनकी स्वाभाविक संकल्प शक्ति का ही परिणाम था। यह कोई कठिन कार्य न था। केवल मात्र संकल्प से हो जाना उन सब कामों का जनक था।

साधन–सिद्धों की संकल्प–सिद्धि का साधन

एक साधक योगी को जन्म–जन्मान्तरों के सत्य को धारण करने की यह सिद्धि प्राप्त होती है। योग–दर्शन बतलाता है:–

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

अर्थात् सत्य प्रतिष्ठ योगी की वाणी क्रिया–फल वाली हो जाती है और ज्योंही मनुष्य बाह्य रूप से सत्य की साधना करता हुआ समाधि के द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करता है तो वह सत्य संकल्प हो जाता है। उसको अनायास ही सिद्धि प्राप्त रहा करती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ 'ऋतम् सत्यम् विमूर्ति या ऋतम्भरा' अर्थात् जिस योगी की बुद्धि सत्य को धारण करती है, वह ऋतम्भरा प्राप्त योगी जो भी मन में संकल्प करता है, प्रकृति उसको स्वीकार कर लेती है और उसके संकल्पित कार्य अनायास ही होने लग जाया करते हैं। यह साधारण मनुष्य अपने साधन के बल से प्राप्त कर पाता है। किंतु अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए यह कोई भी बड़ी

बात नहीं थी। वे स्वयं सत्य स्वरूप हैं। श्रीमद्भागवत के दशवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में जहाँ पर गर्भ स्तुति की गई है, वहाँ पर ब्रह्मा जी ने उनकी स्तुति करते हुए उनको सत्यात्मक कहा है–

सत्यव्रतं सत्यवरम् त्रिसत्य, सत्यस्य योनिंनिहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत सत्य नेत्रं, सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना:।।

अर्थात् ब्रह्माजी करबद्ध स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं कि सदा सर्वदा सत्य रहने वाले सत्यपरायण सत्यात्मक हम आपकी शरण में होते हैं। इसलिए सत्य संकल्प अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण के लिए कारागार के दरवाजों का खुल जाना और उनके लौट आने पर उनका फिर बन्द हो जाना एक बहुत साधारण कर्म था। किंतु यह शक्ति जैसा कि हमने ऊपर कहा है– साधक योगी के लिए बड़ी कठिन साधना के बाद प्राप्य बन पाती है। आगे भगवान की गोकुल–लीलायें प्रारम्भ होती हैं। नन्दराय जी ने उनका जन्मोत्सव मनाया–मंगल, गीत–वाद्य आदि के सब उपक्रम हुए और इसके बाद भी जिस समय नन्दराय जी कंस को वार्षिक कर देने गये हुए थे, उसी अवसर को पाकर पूतना सुन्दर रूप धारण कर गोकुल में आ गई और घूम–घामकर नन्द के घर में जा पहुंची। अनायास ही बालक रूप में छिपे उस परम योगेश्वर को अपनी गोद में लेकर अपने विषमय स्तनों का पान कराने लगी, किंतु परिणाम कुछ भी नहीं निकला। भगवान श्रीकृष्ण अपने उसी दिव्य स्वरूप में पूर्ववत् खेलते रहे। इसके विपरीत पूतना के प्राण पखेरू उड़ गये एवं श्रीकृष्ण के संकल्प से उसने सद्गति पाई। यह उस अनादि महासिद्धि की सहजवशिता थी जिसमें पंच–महाभूतों पर उनका पूर्ण अधिकार प्रतीत हुआ था। इसके लिए उन्हें किसी प्रकार की साधना की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि यह उनका 'ईश्वराहं सदैव मुक्ता:' कथनानुसार सहज ही व्यापार है। यद्यपि साधना करने वाला योगी साधन सिद्धता को पाकर इस शक्ति को प्राप्त कर लेता है, किंतु यह उनकी सहज सिद्धता है और अनादि महासिद्ध श्रीकृष्ण का यह सहज वशीकार है। हमें योग–दर्शन बताता है–

परमाणु–परम महत्वान्तोऽस्य वशीकार:।

अर्थात् योगी का संयम बल इतना बढ़ जाता है कि वह चाहे परमाणु से लेकर परम महत्तत्व अर्थात् मूल प्रकृति पर्यन्त पूर्ण वशीकार रहता है। जहाँ भी जिस वस्तु में अपने को संयमित करता है उस तत्व को जान लेता है और उस पर भी अधिकार प्राप्त कर लेता है। इसी बल के आधार पर भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करता है।

योगी का भूतजय एवं अणिमादिक की प्राप्ति

एक साधक योगी पंचभूतों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संयम करता है और उनका साक्षात्कार करता है। बाद में कठिन प्रयास के बाद वह भूतजय की सिद्धि को प्राप्त करता है और अणिमादि का अधिकारी बनता है। योग–दर्शन में भगवान् पतंजलि लिखते हैं–

स्थूलस्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्व संयमाद्भूतजयः।

अर्थात् योग–दर्शन में पाँच महाभूत माने गये हैं– 1. स्थूल, 2. स्वरूप, 3. सूक्ष्म, 4. अन्वय, 5. अर्थवत्व। वे इन प्रकार हैं–

1. **स्थूल**– पंच महाभूतों का स्थूल स्वरूप इस प्रकार का है जैसे पृथ्वी का पृथ्वी ही स्थूल रूप है और जल का जल तथा वायु का वायु ही स्थूल रूप है। इसी प्रकार से अग्नि का अग्नि और आकाश का खाली खोल। यह सभी इन पाँच महाभूतों के स्थूल स्वरूप हैं, जो स्वरूप हर व्यक्ति को देखने में आते हैं।

2. **स्वरूप**– दूसरा रूप उनका स्वरूप है। उदाहरण के लिए पृथ्वी में गन्ध, जल में चिकनाहट, अग्नि में गर्मी, वायु में कम्पन और प्रकाश में पोल। यह इन पाँच महाभूतों के स्वरूप हैं।

3. **सूक्ष्म**– तीसरा रूप सूक्ष्म है जिसको तन्मात्र कहा जाता है, जैसे पृथ्वी का तन्मात्र गन्ध, जल का तन्मात्र रस, अग्नि का तन्मात्र रूप, वायु का स्पर्श तन्मात्र है। यह पंचभूतों का तीसरा रूप है।

4. **अन्वय**– चौथा रूप अन्वय है। अन्वय का अर्थ ओतप्रोत रहना जैसे सतोगुण, तमोगुण–रजोगुण यह तीनों गुण अपने प्रकाश प्रवृत्ति और स्थिति वाले धर्मों से सर्वत्र अनुगत रहते हैं, यही पंचभूतों के अन्वय रूप हैं।

5. **अर्थवत्व**– अर्थात् इनका अर्थवान होना इनसे कोई उपकार हो, लाभ हो, सो यह पाँचों महाभूत अपवर्ग के दाता हैं। महाभूत के सम्मिक्षण से ही मनुष्य भोग का भोक्ता है। इसलिए नित्य चेतना आत्मा बोद्धेय धर्मों का अनुगामी होकर पंच महाभूतों में जनित सभी प्रकार के दृश्यात्मक भोगों का भोक्ता रहता है। दृश्य का दूसरा कार्य अपवर्ग है। जिस समय जीव वैराग्यभाव को प्राप्त होकर बराबर सूक्ष्मतर और उसके सूक्ष्मतम तत्वों में संयम करता हुआ आगे बढ़ता रहता है, तब वह अपवर्ग को प्राप्त कर लेता है। भूतों के इन भिन्न पाँच रूपों में जब तक योगी साक्षात् पर्यन्त बराबर करता रहता है तो उसके फलस्वरूप वह भूतजय को प्राप्त करता है और भूतजय कर लेने पर–

ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः काय सम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च।

अर्थात् पंचभूतों पर विजय प्राप्त कर लेने पर अणिमादिक सिद्धियाँ योगी को अनायास ही प्राप्त हो जाया करती हैं। इस सूत्र के भाष्य में भगवान व्यासदेव जी लिखते हैं–

तत्राणिमा भवत्यणुः। लघिमा लघुर्भवति। महिमा महान् भवति। प्राप्तिः अंगुल्यग्रेणापि स्पृशति चन्द्रमसम्। प्राकाम्यमिच्छानभिघातो भूमावुन्मज्जति निमज्जति यथोदके। वशित्व भूतभौतिकेषु वशी भवत्यवश्यश्चान्येषाम्। ईशित्वं तेषां प्रभवाप्ययव्यूहानामीष्टे यत्र कामावसायित्व सत्यसङ्कल्पता यथा संकल्पस्तथा भूतप्रकृतीनामवस्थानम्।

अर्थात् भूतजय प्राप्त कर लेने पर योगी को अणिमादिक सिद्धियाँ अनायास प्राप्त हो जाती हैं:-

1. **अणिमा** – भवत्यणु–अणुमात्र हो जाना।

2. **लघिमा** – लघुभवति–हल्का हो जाना।

3. **महिमा** – महान भवति – बड़ा हो जाना।

4. **प्राप्ति**– अङ्गुल्यग्रैऽपिस्पृशति – अँगुली के अग्रभाग से चन्द्रमा को छू लेने की ताकत होना।

5. **प्राकाम्य**– इच्छाऽनेभिघातो भूमादुन्मज्जति– किसी भी प्रकार की इच्छा का न रुकना, पूर्ण हो जाना, चाहे तो योगी जिस प्रकार सर्व साधारण मनुष्य जल में गोता लगा लिया करते हैं और बाहर निकल आया करते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी में प्रवेश करके बाहर निकल आयें।

6. **वशित्वम्**– भूतभौतिकेषुवशी भवति:– अर्थात् पंच महाभूतों से बनने वाले सभी पदार्थों पर उस योगी का पूर्ण वशीकार होता है और वह स्वयं किसी के वश में नहीं रहता।

7. **ईशत्व**– तेषाम्प्रभवोप्ययव्यूहाना–मीष्टे– अर्थात् पंच महाभूतों के भौतिक कार्यों को बनाना और बिगाड़ने की सामर्थ्य रखना।

8. **यत्रकायावसायत्वम:** – सत्य संकल्पस्तथा– अर्थात् सत्य संकल्पता जैसे योगी की इच्छा होती है, पंचभूतों का उस प्रकार अवस्थान हो जाता है और इन महा सिद्धियों को पाकर योगी सर्व सामर्थ्यवान बन जाता है। महाभूतों का कोई भी कार्य इसके प्रतिकूल नहीं होता, प्रत्युत उसको काय सम्पत् और प्रगट हो जाती है। काय सम्पत्ति को भगवान पतंजलि जी ने इस प्रकार कहा है–

रूप लावण्य बलवज्र संहननत्वानि कायसम्पत्।

अर्थात् रूप–अत्यन्त रूपवान् कान्तिवान वज्र के समान दृढ़ और सब प्रकार अच्छेद्य शरीर वाला होता है। सब प्रकार से शरीर की अच्छेद्यता अभेदता को प्राप्त रहना यह योगी की काय सम्पत्ति है, जो भूतजय प्राप्त होने पर स्वभाव से ही बनी रहती है। साधन–सिद्ध योगी को जीवन भर की कठिन साधना के बाद भूतजयता प्राप्त होती है। तब उसके ऊपर भूतों के दुष्परिणाम नहीं हो पाते। भूतजय योगी विषपान करके उसको सहज में ही पचा जाता है और अमृत के गुणों को अपने अन्दर प्रकट कर देता है। साधना करने वाले योगी को यह सम्पत्ति बड़े कठिन प्रयत्न के बाद प्राप्त हुआ करती है, किंतु अनादि महासिद्ध सदैव ईश्वर: सदैव मुक्त के स्वरूप को धारण करने वाले को सब खेल जैसी बात थी। उन्होंने अपनी इस अल्पीय सी अवस्था में ही संकट को पैर मार कर अपने अतुल बल का परिचय दे दिया। वह उनका बिना किसी साधना के सहज योग ऐश्वर्य था। दूसरे योगी कठिन तपस्या के बाद इसे प्राप्त कर

पाते हैं तब इतने बन पाते हैं।

बल प्राप्ति का अमोघ साधन

योग–दर्शन में भगवान पतंजलिदेव अपने शरीर में अतुलित बल बढ़ाने का एक अमोघ साधन बतलाते हैं। साधक योगी पहले ब्रह्मचर्य व्रत आदि का पूर्ण रूपेण पालन करके बाद में धारणा, ध्यान, समाधि का निरन्तर अभ्यास करते हुए संयम–सिद्धि को प्राप्त करे। तब वह अपनी साधना के बल पर अपने शरीर में हाथियों के बलों को उत्पन्न कर सकता है। चीते जैसी स्फूर्ति ला सकता है। बशर्ते उसने अपनी साधना को निरन्तर दृढ़तापूर्वक आदर सहित किया हो। भगवान् पतंजलि बतलाते हैं–

बलेषु हस्तिबलादीनि।

यदि योगी बलों के अन्दर संयम करता है तो उसके अन्दर तत्काल हाथियों का सा बल बढ़ जाता है एवं उसका शरीर वज्र के मानिन्द दृढ़ हो जाता है। उसके लिए पर्वतों को तोड़ देना न कुछ के बराबर होता है, किंतु साधना सिद्धों के लिए यह सब उनकी अपनी साधना के बल पर होता है पर अनादि काल से स्वत: सिद्ध रहने वाले महान आत्मा श्रीकृष्ण के लिए यह अनायास सहज कर्म था, जो उनके ईक्षण मात्र से स्वत: हो गया।

तृणावर्त का वध तथा लघिमा एवं गरिमा का प्रयोग

भगवान के इससे आगे के चरित्र वर्णन में तृणावर्त राक्षस की कथा है। यह तृणावर्त के रूपधारी कंस का एक नौकर था, जिसने 'झंझावात' का रूप धारण कर गोकुल में बड़ा भारी आतंक मचा दिया। सम्पूर्ण गोकुल गाँव ब्रज–रज से भर गया। उस झंझावात में एक दूसरे के शरीर नहीं दिखाई पड़ते थे। महा अन्धकार छा गया था। माता यशोदा ने अपने बाल गोविन्द को एक ओर जमीन पर बिठा दिया था। राक्षस तृणावर्त का दांव लग गया और वह उनको उठाकर आकाश में ले गया। तृणावर्त के मनोभाव जानकर भगवान ने अपने आपको रूई के समान हल्का बना लिया और उसके वेग के साथ–साथ आकाश में चले गये तथा तृणावर्त के गले को बालक के रूप में छिपे पकड़े हुए उस दिव्य तेज ने आकाश में पहुँचकर और उसके गले को पकड़कर गरिमा के प्रयोग से इतना भारी अपने आपको बना लिया कि श्रीमद्भागवत् में व्यास जी को यह शब्द कहने पड़े–

तमश्मानं मन्यमान, आत्मनो गुरुमत्तया।
गले ग्रहीत उत्सष्टुं, नाशक्नोददुम्तार्भकम्।।

अर्थात् उस तृणावर्त राक्षस ने भगवान श्रीकृष्ण को पत्थर के मानिन्द भारी समझा। भगवान ने उसके गले को पकड़ रखा था। भारी प्रयत्न करने पर भी वह अपना गला नहीं छुड़ा सका और अन्त में उसको मृत्यु के मुख में ही जाना पड़ा। जगदात्मा की यह सारी लीलाएँ योग से ही सम्बन्ध रखने वाली हैं। अन्य जितने भी अवतार हुए उनमें से किसी ने भी कहीं पर इतने

विशेष ऐश्वर्य का प्रदर्शन नहीं किया कि जिससे उनके चरित्रों से योगिक ऐश्वर्य झलक पड़े। भगवान श्रीकृष्ण का सारा लीला–चरित्र योग–ऐश्वर्य से परिपूर्ण है। किंतु यह सबके सब कार्य उनमें संकल्प मात्र जन्य थे और यही सब उनकी अनादि काल से चली आने वाली सिद्धिता है।

इस छोटे से लेख में उन जगदात्मा के अलौकिक योग ऐश्वर्य को यत्किंचित दिखलाने का प्रयत्न किया है। मैं समझता हूँ कि इन चरित्रों के पढ़ने से हर साधक को योग की उत्कृष्टता का ज्ञान अवश्य हो जायेगा। भगवान् श्रीकृष्ण स्वतः सिद्ध थे किंतु उन्होंने अपने जीवन में जिस प्रकार अणिमादिक ऐश्वर्य का प्रयोग किया है उस बल की साधना करने वाले योगी यत्र–तत्र मौजूद हैं जिनकी इस प्रकार की दन्त कथाएँ परम्परा से अवगत होती ही रही हैं। साधारण साधक समुदाय के अन्दर भी लोग अपनी छोटी–मोटी प्राण–शक्ति का प्रदर्शन आज दुनिया में किया करते हैं सैंकड़ों मन का बजन अपनी छाती पर रखाते हैं। बैलों की गाड़ी, ट्रक अपनी छाती पर से उतरवाते हैं। यह उनकी प्राणशक्ति का थोड़ा सा प्रदर्शन होता है। इसमें संयम बल की कोई भी साधना नहीं किंतु प्राण पर थोड़ा सा जय प्राप्त करने पर वे लोग इस प्रकार के अद्‌भुत कर्म करके दिखलाया करते हैं। जब मुझसे कोई यह पूछता है कि परमात्मा की ओर चलने वाले मार्गों में आपको कौन सा प्रिय है तो मुझे उसी समय केवल मात्र लीला तनु–धारण करने वाले श्रीकृष्ण की स्मृति हठात् आ जाया करता है और मेरी वाणी से एक ही उत्तर मिलता है। कि परमात्मा की ओर जाने वाले रास्ते बहुत हैं और 'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मार्गों को योगी तय भी कर लेता है किंतु हमारे पूर्वजों ने जिस विद्या का मान किया तथा श्रीकृष्ण–लीला अभिनय के अन्दर जो विद्या पग–पग पर टपकती है वह पवित्र योग विद्या ही है। इस छोटे से लेख में भगवान श्रीकृष्ण की चार–पाँच कथाओं की ओर संकेत करके उनके योग ऐश्वर्य को बतलाने का ही प्रयत्न किया गया है।

सच्चिदानन्द रूपाय व्यापिने परमात्मने,
नतः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।

अर्थात् सच्चिदानन्द रूप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं।

एक अध्ययन –

यौगिक षटकर्म : आयुर्वेदीय पञ्चकर्म

आचार्य ब्रह्मचारी श्री दासलाल

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' के नियम के अनुसार मानव शरीर धर्म सम्पादन का एकमात्र साधन है। अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति इसी शरीर के द्वारा प्राप्त होती है। योगियों ने इस शरीर के विभिन्न स्थानों की शुद्धि के लिए कुछ साधनों को आविष्कृत किया, जिनके करते रहने से मानव शरीर रोगरहित, बलयुक्त, दीर्घायु वाला बन जाता है। आत्म–ज्ञान के लिए मन की एकाग्रता परमावश्यक है, इस एकाग्रता के लिए भी घट–शुद्धि आवश्यक है। घटांश मन और प्राण से जुड़े हैं तथा आत्मा का आश्रय स्थल भी प्राण है। अतः शरीर, मन, शरीर, प्राण व आत्मा के बीच संचार का साधन है। घट–शोधन से शरीर शुद्धि के साथ–साथ मन तथा प्राणों को भी बल मिलता है। ये शरीर शोधन के कर्म षटकर्म कहलाते हैं। वे ये हैं–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेति, लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चेतानि, षटकर्माणि समाचरेत्।।

धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक तथा कपालभाति ये षटकर्म हैं।

धौति–अन्तधौति, दन्तधौति, हृदधौति तथा मूल–शोधन। भेद से धौति चार प्रकार की होती है। धौति से उदर के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, इससे अपच, गलावरोध, अतिसार, संग्रहणी, श्वास, कांस, प्लीहा, कुष्ठ तथा बीस प्रकार के कफ–दोष दूर होते हैं। धौति का स्वरूप हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार बताया है–

चतुरंगुल विस्तारं, हस्त पञ्चादशायतम्।
गुरुपदिष्ट मार्गे सक्तं, वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।।
पुनः प्रत्याहारेच्चेतदुदितं, धोतिकर्म तत्।।

अर्थात् चार अंगुल चौड़ी, पन्द्रह हाथ लम्बी महीन कपड़े को गुरुपदिष्ट मार्ग से धीरे–धीरे ग्रसे, पुनः उसे मुख से बाहर निकाल लें यह धौति–कर्म है।

अन्तर्धौति के पुनः चार प्रकार हैं।

वातसार, वारिसार, वन्हिसार, बहिष्कृत धौति।

वात–सार – कौये के चोंच के समान ओठ करके शनैः – शनैः वायु पीवे। पीकर फिर न्योली द्वारा परिचालन कर निकाल लें, इससे शरीर निर्मल व रोग–रहित होता है, जठराग्नि बढ़ती है।

वारि–सार–इसमें कण्ठ तक पानी पिया जाता है, फिर चालित करके अधोमार्ग से निकाला जाता है, इसे शंख प्रक्षालन भी कहते हैं। इसके करने से पहले साधक को खिचड़ी आदि खानी चाहिए। स्नेहन के बाद उत्तम होता है।

पानी थोड़ा गर्म ही पीना चाहिए, इसके बाद तीन–चार आसन कटिचक्र आदि करने होते हैं। पहले एक दिन पूर्व त्रिफला चूर्ण का सेवन किया जाय तो उत्तम रहेगा। त्रिफला से पेट की आँतों व मलाशय में चिपका व सूखा मल फूल जायेगा, मल–शोधन ठीक से व आसानी से हो जायेगा।

वन्हि–सार– प्राणवायु को पेट से बाहर निकालकर नाभि से मेरु के पृष्ठ भाग से लगावें इसे बार–बार आगे–पीछे करें इसे अग्नि–सार कहते हैं, इससे उदर के समस्त रोग दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है। देव–तुल्य सुन्दर शरीर हो जाता है।

बहिष्कृत धौति–काकी मुद्रा के द्वारा वायु पान कर उदर में भर लिया जाता है। कम से कम डेढ़ घण्टे तक पेट में रख कर अधोमार्ग से निकाला जाता है। इसके साथ ही गुदा की जो त्रिवली है उसे भी जल से शुद्ध किया जाता है।

दन्त धौति– ये पाँच प्रकार की हैं– जिव्हा मूल, कर्ण–रन्ध्र, दन्त–मूल, कर्ण–युग्म तथा कपाल–रन्ध्र।

खैर आदि के रस के साथ या शुद्ध मिट्टी से दन्तमूल की शुद्धि करे। मौलसिरी तथा बबूल का दातून सर्वश्रेष्ठ है, यह दन्तमूल धौति है। हाथ के मध्य की तीन अंगुलियाँ गले में डालकर जिव्हमूल को स्वच्छ करना चाहिए इससे कफदोष दूर होते हैं। जिव्हा में जो मैल जमा रहता है, उसे भी खुरच लेना चाहिए। यदि साफ न किया जाय तो पेट में जाकर हानि करता है।

कर्ण रन्ध्र धौति में कान के दोनों रन्ध्रों को तर्जनी व अनामिका से नित्य शोधन करे। कर्ण रन्ध्र से तेल डालने से मल फूल जाता है, तब इसे शलाका से बाहर निकालना चाहिए। कपाल रन्ध्र में सिर के मध्य भाग में जो कपाल है उसका दाँये हाथ के अँगूठे से मर्दन करना चाहिए, इससे कफ दोष दूर होता है। सोकर उठने पर, भोजन के बाद एवं सायंकाल इसे नित्य करना चाहिए। अनेक प्रकार के तेलों के द्वारा या गौ घृत द्वारा कपाल रन्ध्र का स्नेहन करना चाहिए।

हृद धौति तीन प्रकार की होती है–दण्ड धौति, वमन धौति और वसन या वस्त्रधौति।

दण्ड धौति में केले के मृदुभाग का डंडा, हरिद्रा या बेंत का डंडा हृदय के मध्य भाग में बार–बार डालकर निकालना होता है। इससे समस्त हृदय रोग दूर हो जाते हैं।

वमन धौति में भोजन करने के बाद कंठ तक जल पीकर क्षण भर के बाद ऊपर को देखते हुए वमन द्वारा निकाल दिया जाता है। यह क्रिया भोजन के दो–तीन घटे बाद करनी चाहिए, इससे कफ का निवारण होता है।

वमन–धौति व वस्त्र धौति–वस्त्र धौति के बारे में हठयोग प्रदीपिका से

मिलता–जुलता घेरण्ड संहिता में भी मिलता है।

चतुरंगुल विस्तारं, सूक्ष्म वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।
पुनः प्रोत्याहरेदेतत्, प्रौच्यते धौतिकर्म तत्।।

इसका फल बताते हुए बताया है–

गुल्म ज्वर प्लीहा कुष्ठं, कफपित्तं विनश्यति।
आरोग्यं बल पुष्टिश्च, भवेत्तस्य दिनेदिने।।

वस्त्र धौति से गुल्म, ज्वर, प्लीहा रोग, कुष्ठ, कफ–पित्त का नाश होता है। प्रतिदिन आरोग्यता तथा बल–पुष्टि होती है।

रुद्रयामल में वस्त्र धौति के बारे में लिखा है–

धौतिकुर्यात् समाकुर्यात्, तप्तोदक निसेवनम्।
शुक्लवस्त्रं सूक्ष्म सूत्र, चष्टांगुल प्रमाणकम्।।
द्वात्रिंशद्धस्तमानं तु पूर्ण, संख्या उदीरिता।
मन्त्री प्रथमतः कुर्याच्चतुरं गुल वस्त्रकम्।
क्रमेण वर्धयेन्नित्यम्, दीर्घं च प्रसवे तथा।

रुद्रयामल के अनुसार धौति आठ अंगुल चौड़ी तथा बत्तीस हाथ लम्बी होनी चाहिए। पहले चार अँगुल चौड़ी धौति करे, धीरे–धीरे बढ़ाकर आठ अँगुल तक ले जायें।

मूल शोधन–हल्दी की जड़ या मध्यमा अँगुल से मूल शोधन (गुदा शोधन) करना चाहिए। इस क्रिया से शरीर कान्तिमान तथा निरोग रहता है। आयुर्वेद के अनुसार इस क्रिया से बवासीर–भगन्दर तथा अन्य वायु की क्रूरता से होने वाले रोग शान्त होते हैं। हल्दी की जड़ को छीलकर ही प्रयोग में लाना चाहिए। हल्दी विषनाशक (Antibiotic) होती है। रक्त शोधक होने से भी इसका प्रयोग बताया गया है।

वस्ति–

जलवस्तिर्शुष्क वस्तिरयाद द्विविधास्मृता।
जलवस्तिः जले कुर्यात्, शुष्कवस्तिं सदा क्षितौ।।

जलवस्ति–जल में नाभि–पर्यन्त खड़े होकर उत्कटासन लगावे। न्योली के द्वारा नलों को उठाकर अपान वायु का ऊर्ध्वाकर्षण करे। ऐसा करने से जल में पेट चढ़ जायेगा। गुदा में बाँस की चिकनी छः अँगुल लम्बी नली अपने छोटी अँगुली के बराबर मोटी लगाकर पानी चढ़ाया जाता है। पेट में पानी आने पर नौली के दाँये–बाँये चलाकर जल बाहर निकाल देना चाहिए, यही जल वस्ति है। आयुर्वेद में जिन प्रमेहादि महारोगों में वस्ति का निषेध है, वह सब जल वस्ति कर सकते हैं, परंतु टी.बी. आदि के रोगी को यह नहीं करना चाहिए, क्योंकि उसका जीवन मल पर आधारित होता है।

वस्ति के लाभ–घेरण्ड संहिता में वस्ति का लाभ इस प्रकार बताया गया है–

प्रमेहञ्च उदावर्त्त, क्रूर वायुं निवारयेत्।
भवेत स्वच्छन्द देहश्च, कामदेव समोभवेत्।।

अर्थात् प्रमेह, उदावर्त तथा क्रूर वायु का नाश होता है। देह स्वच्छन्द तथा कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार गुल्म, प्लीहा, उदर रोग, वात–पित्त–कफ सम्बन्धी दोष तथा समस्त रोग वस्ति से दूर हो जाते हैं। आयुर्वेद में वस्ति औषधि तथा तेल द्वारा कराई जाती है, परंतु यौगिक वस्ति में केवल शुद्ध जल का प्रयोग होता है। मौसम आदि का ध्यान रखना इस जल वस्ति में भी आवश्यक है। जिस जल में वस्ति करे वह जल साफ होना चाहिए। वस्ति से पहले या वस्ति के दिनों में खिचड़ी, दलिया का ही सेवन करना चाहिए।

स्थल वस्ति–घेरण्ड संहिता के अनुसार पश्चिमोत्तासन में बैठकर अश्विनी मुद्रा के अभ्यास से गुदा का आकुचन–प्रसारण करे। इसके अभ्यास से कोष्ठ दोष दूर होते हैं, जठराग्नि बढ़ती है, आम–वात का नाश होता है।

नेति–हठयोग प्रदीपिका में नेति के बारे में लिखा है–

सूत्रं वितस्तिसुस्निग्धं, नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेति, सिद्धैः निगद्यते।।

एक विलायत सुस्निग्ध कठोर सूत्र को नासिका छिद्र में डालकर मुख से निकाल ले यह नेति कहलाती है। घेरण्ड संहिता में भी ठीक इसी प्रकार का श्लोक है। रुद्रयामल में भी और स्पष्ट विधि बताई है।

सूक्ष्म वस्त्र समुद्भूतम्, डोरकं सूक्ष्म रन्ध्रके।
नासिकाया दृढ़तरं, कोमलं चाति निर्मलम्।।
शनैः शनैर्नियोज्याच, जिव्हामूले निवेशयेत्।
जिव्हामूलात् सदादाय, वारं द्वादशं सुधीः।
मन्दमन्दाघर्षणं तु कृत्वा, भेदं समानयेत्।।

सूक्ष्म व निर्मल धागे की बनी, दृढ़ व कोमल डोरी को नासिका में डालकर जिव्हा मूल में निकाले। जिव्हामूल से निकालकर बारह बार मन्द–मन्द घर्षण करके चतुर साधक नेति का अभ्यास करे। इस नेति के साथ–साथ जल–नेति, दुग्ध व घृत–नेति भी कराई जाती है। आयुर्वेद में कपाल व गले के ऊपर के भागों में स्थित दोषों का हरण करने के लिए नस्य का विधान है। इसमें विभिन्न औषधि–द्रव्य व तेल–घृत का प्रयोग किया जाता है। नेति का लाभ हठयोग–प्रदीपिका में इस प्रकार वर्णित है–

कपाल शोधनी चैव दिव्यदृष्टि प्रदायिनी,
जत्रूर्ध्व जातरोगोघ नेतिराशु निहन्ति च।

अर्थात् नेति कपाल को शुद्ध करती है, दिव्य–दृष्टि प्रदायिनी है। स्कन्ध के ऊपर के समस्त रोगों का नाश करती है। घेरण्ड संहिता में–

साधनान्नेति योगस्य खेचरी सिसिद्धमाप्नुयात्।
कफदोषाः विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रायते।।

नेति से खेचरी सिद्धि मिलती है, कफदोष दूर होते हैं तथा दिव्य–दृष्टि की प्राप्ति होती है। योग साधक के लिए नेति बहुत आवश्यक है। प्राणायाम के अभ्यासी को विशेष रूप से करनी चाहिए। श्वास–कांस आदि रोगों में भी लाभ करती है समस्त शिरो–रोग दूर होते हैं।

लौलिकी (नौलि)–हठयोग प्रदीपिका में परिभाषा इस तरह है–

अमंदावर्तवेगेन तुदं सव्यासव्यतः, नतांसो भामयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्षते।।

अर्थात् कन्धे झुकाये हुए अत्यन्त वेग वाले आवर्त (जल भँवर) के समान पेट को दाँये–बाँये हिलाने को नौलि कहते हैं। घेरण्डसंहिता में भी यही बात कही गई है। रुद्रयामल में इस प्रकार बताई है–

घूर्णायमानमाकुर्याद्, उदरं परमेश्वर।
सर्वदा चालनं कुर्यात्, प्राणवायु प्रधारणम्।।
वामे घूर्णितमाकृत्थ, दक्षिणे घूर्णितं चरेत्।
एवं क्रमेण देवेश, पुष्टपाकं समाचरेत्।।

अर्थात् प्राणवायु को रोक कर (बाहर निकालकर) पेट को क्रम से दांये–बांये घुमावे यह नौलि कर्म है, नौलि के अभ्यास के लिए पहले अग्निसार करना चाहिए। फिर झुक कर जांघों पर हाथ रखकर बाह्य कुम्भक करके नलों का उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब नलें उठ आवे तो दांये–बांये घुमाने का प्रयत्न करना चाहिए। घेरण्ड–संहिता में नौलि का फल बताया है– "सर्व रोगान् हन्तीह देहानिल विवर्धनम्।" नौलि समस्त रोगों का नाशक तथा जठराग्नि प्रदीपक है। हठयोग प्रदीपिका में इसका फल बताया है–

मंदाग्नि संदीपक पाचनादि, संधापिकानन्दकरी सदैव।
अशेष दोषामय शोषणी च, हठक्रिया नौलिरियं च नौलिः।।

मंदाग्नि का दीपन करने वाली तथा अन्न का पाचन करने वाली क्रिया है। समस्त दोष व रोगों का नाश करती है। हठयोग की क्रियाओं में नौलि सर्वश्रेष्ठ है। रुद्रयामल में 'नेउली परमं योगं गात्र दृढ़ निबन्धनम्' कहकर इसे गात्र को दृढ़ तथा सुडौल बनाने वाली क्रिया बताई है। आयुर्वेद में नौलि जैसी किसी क्रिया की कल्पना नहीं है।

त्राटक–हठयोग प्रदीपिका में त्राटक का वर्णन इस प्रकार किया है–

निरीक्षेन्निश्चल दृशा, सूक्ष्म लक्ष्यं समाहिताः।
अश्रु संपातपर्यन्तमाचार्यैः त्राटकं स्मृतम्।।

निश्चल दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य को तब तक देखें जब तक आँखों से अश्रु न बहने लगें।

इस क्रिया को आचार्यों ने त्राटक कहा है। घेरण्ड संहिता में भी शब्दान्तर से यही परिभाषा की है। त्राटक में पहले काले बिन्दु पर अभ्यास करना चाहिए, फिर धीरे–धीरे गुरु के बताये अनुसार आगे बढ़ें। गुरुदेवजी के निर्देशन व निरीक्षण में ही सफलता मिल सकती है।

हठयोग में त्राटक का फल इस प्रकार बताया है–

मोचनं नेत्र रोगाणां, तन्द्रादोनां कपाटकम्।
यत्नतश्त्राटकं गोप्यं, यथा हाटक पेटकम्।।

इससे पेट के सब रोग दूर होते हैं। तन्द्रा इत्यादि को रोक लेता है, जैसे सुवर्ण की पेटी गुप्त रखी जाती है इसी तरह से इस क्रिया को गुप्त रखें।

घेरण्ड संहिता में इसका लाभ इस प्रकार बताया है–

एवमभ्यास योगेन, शाम्भवी जायते ध्रुवम्।
नेत्र दोषाः विनश्यति, दिव्य दृष्टिः प्रजायते।।

इसके अभ्यास से शाम्भवी मुद्रा मिलती है। समस्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं तथा दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है। त्राटक का अभ्यास परिपक्व हो जाने पर ज्योति का साक्षात्कार होता है। उस ज्योति को मूर्धा की ओर ले जाने पर सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। 'मूर्द्धं ज्योतिष सिद्ध दर्शनम्' यह योग–दर्शन का सूत्र है। त्राटक के अनेक दिव्य फल पढ़ने व सुनने में आते हैं। योगी पृथ्वी के अन्दर की वस्तु लेता है, बिना प्रकाश के पढ़ सकता है, दीवार के पीछे की वस्तु को भी देख सकता है, परंतु ये सब उपलब्धियाँ गुरुकृपा से ही सम्भव होती हैं। अतः साधक को अनुभवी गुरुदेव से ही सीखनी चाहिए अन्यथा हानि होती है।

कपाल भाति–घेरण्ड संहिता में इसके तीन भेद बताये गये हैं–

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण, शीत्क्रमेण विशेषतः।
भालभांति त्रिधा कुर्यात्, कफदोष निवारयेत्।।

इड़ा (बांयी नासिका) से वायु पूरक करे तथा पिंगला से रेचक करे, यह वातक्रम कपाल भाति है। इसी प्रकार पिंगला से पूरक तथा इड़ा से रेचक करे।

व्युत्क्रम कपाल भाति में नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा जल खींचकर मुख के द्वारा निकाले तथा मुख से जल खींचकर नाक से निकाल दे, यह व्युत्क्रम कपाल भाति है। इससे कफ का नाश होता है।

शीतक्रम कपाल भाति–

शीत्कृत्य पीत्वा वस्त्रेण, नासानले विवर्जयेत्।
एवमभ्यास योगेन, कामदेवा समोभवेत्।।
न जायते च वार्धक्यं, जरा नैव प्रजायते।
भयेत् स्वच्छन्द देहश्च, कफदोषं निवारयेत्।।

मुँह से शीत्कार करके जल पीकर उसे नासिका नाल से निकाले। इसके अभ्यास से

योगी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है, उसमें बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। देह अत्यन्त निर्मल होता है, कफ–दोषों की निवृत्ति होती है।

इस प्रकार यौगिक षट्कर्मों का संक्षेप में वर्णन दिया गया है। विस्तार के लिए पूज्यनाद गुरुदेव द्वारा रचित यौगिक षटकर्म पुस्तक व घेरण्ड संहिता आदि का अवलोकन करना चाहिए।

घटशोधन के लिए योग में षटकर्म का विधान है उसी प्रकार से आयुर्वेद के आचार्यों ने वात, पित्त और कफ को समान अवस्था में लाने के लिए पंचकर्म का विधान बनाया है ताकि वात, कफादि दोषों का शोधन होकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सके। पंच कर्म के अन्तर्गत वमन, विरेचन, वस्ति, अनुसाधन वस्ति एवं नस्य हैं जो षटकर्म की भांति ही दोषों का निवारण करके उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने वाले हैं। पंच कर्मों में औषधियों का प्रयोग किया जाता है जबकि षटकर्म में औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता यही दोनों में मुख्य अन्तर है।

षटकर्म और पंचकर्म दोनों का लक्ष्य यह है कि मनुष्य स्वस्थ बना रहे। यदि कोई रोग शरीर में आ गया है तो इन उपायों से रोग का प्रशमन कर लें और आरोग्य लाभ कर ले। इस प्रकार से साधक को दोनों ही पद्धतियों का ज्ञान होना चाहिए। पंचकर्म में उचित एवं पथ्य का वर्णन चरक संहिता में विस्तार से दिया गया है उसका भी ज्ञान साधक को प्राप्त कर लेना चाहिए।

▣ ▣ ▣

सर्वशक्तिमान् ईश्वर सभी शक्तियों तथा प्रज्ञा का एवं पवित्रता, प्रेम, शान्ति, आनन्द और ज्ञानशक्ति का भण्डार है। उससे कुछ भी माँगने की आवश्यकता नहीं है, केवल स्वयं उसके समीप बैठने की, अपने आपको उसके समीप, उसके अन्दर अथवा उसको अपने अंदर अनुभव करने की आवश्यकता है, अपना हृदय प्रेम, शान्ति एवं आनन्द से भरपूर हो जायेगा। ये सभी आपको स्वतः प्राप्त होंगे।

अष्टाङ्ग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा

(गतांक से आगे)

इसी कारण उपनिषद् का यह कथन है कि

"मनः एव कारणं बन्धमोक्षयोः बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं मनः"

अर्थात् जीवात्मा की मोक्ष अथवा बन्धन का कारण मन ही है। विषयासक्त मन संसार के रूप में द्वैत का निर्माण करता है तथा निर्विषय मन चित्तवृत्तियों से रहित होकर बुद्धि में परमात्मा के स्वरूप के साक्षात्कार का कारण बनता है, क्योंकि चित्तवृत्तियों के नितान्त अभाव में दृष्टा के रूप में परमात्मा का स्वरूप स्वतः प्रकट हो जाता है। महर्षि पतंजलि भी यही कहते हैं कि "तदा दृष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्"। इस बलशाली मन को वश में करने के लिए निरन्तर श्रद्धापूर्वक योगाभ्यास तथा विवेकपूर्वक विषयों की भोगभावना से वैराग्य की आवश्यकता होती है। इस साधना की सफलता के लिए सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ सद्गुरु तथा परमात्मा की अहैतुकी कृपा की विशेष आवश्यकता होती है। यह तभी संभव है जब योगाभ्यासी कामनाओं के संकल्प–विकल्पों से मुक्त हो जाय, क्योंकि श्रुति के अनुसार यही स्थिति कृपा की अधिकारी बनाती है:–

अणोरणीयान् महतो महियान् आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तं अक्रतुं पश्यति वीतशोकः धातुः प्रसादात महिमानमीशम्।।

अर्थात् प्राणियों की बुद्धिरूपी गुहा में गुप्त आत्मा ही सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म तथा महान से भी महानतम है। किंतु परमात्मा की कृपा से उसकी यह महिमा तभी प्रकट होती है जब वह द्वन्द्वों तथा संकल्पों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। इसी कारण भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिसने इन्द्रियों तथा उनके स्वामी मन पर विजय प्राप्त नहीं की है उन्हें योग की सिद्धि सम्भव नहीं है। जो लोग इन्द्रियों तथा मन पर संयम करते हुए उन्हें विषयभोगों के आकर्षण से मुक्त कर लेते हैं तथा अष्टांगयोग के साधनों को करते हुए चित्त में क्रमशः एकाग्रतापरिणाम, समाधिपरिणाम तथा निरोधपरिणाम सिद्ध करके मन पर विजय की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, वही साधक आत्मसाक्षात्कार के अधिकारी बनते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट संकेत देते हैं कि–

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मनि संस्थितम्।
यतन्तो अप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसा।।

अर्थात् निरन्तर श्रद्धापूर्वक साधना करने वाले तथा शुद्ध अन्तःकरण वाले सिद्धयोगी ही अपने अन्तःकरण में विशुद्ध बुद्धि के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार करते हैं किंतु

जो प्रयत्न करते हुए भी विशुद्ध बुद्धि प्राप्त नहीं कर पाये हैं तथा जिनका मन पूर्णरूपेण माया के मलावरण से मुक्त नहीं हो पाया है, वह साधक आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें और अधिक साधना की आवश्यकता है। इस स्थिति में अर्जुन को फिर शंका होती है कि अन्तःकरण को विशुद्ध बनाने वाली साधना इस जन्म में पूर्ण होना संभव नहीं लगता, क्योंकि अनादि काल से माया में लिप्त प्राणी का अन्तःकरण माया के अनन्त भावों से कलुषित है। श्रुतिशास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि–

प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विकल्पिता।
माया हि ऐषा अस्य देवस्य यया मोहितः स्वयम्।।

अर्थात् हिरण्यगर्भरूप प्राण से आरंभ होने वाले प्रकृतिरूपी माया के अनन्त अवयव यानि त्रिगुणात्मक भाव हैं जिनसे सृष्टि की रचना हुई है। प्रत्येक जीवात्मा का अन्तःकरण इन्हीं भावों से आच्छादित है। अन्तःकरण से इन भावों को धोकर निकालना तथा उसे निर्मल बनाना किसी एक जन्म में संभव नहीं। अतः अर्जुन की यह शंका कि–

अयति श्रद्धयोपेतो योगात् चलितमानसः।
अप्राप्य योगसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।

अर्थात् श्रद्धापूर्वक योगसाधना करते हुए भी यदि मन योगारूढ़ नहीं हो पाया तथा योगसिद्धि प्राप्त किये बिना मृत्यु हो जाती है, तब वह परमात्मा के स्वरूप को कैसे प्राप्त कर सकता है। भगवान श्रीकृष्ण इसका उत्तर देते हैं कि यह चिन्ता का विषय नहीं, क्योंकि–

प्राप्य पुण्यकृतान् लोकान् उषित्वा शाश्वतिसमाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद् हि दुर्लभतरं लोके जन्म इदीदृशम्।।
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते अवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।
प्रयत्नात् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परां गतिम्।।

अर्थात् यदि योगाभ्यासी साधक की योगसिद्धि के पूर्व ही मृत्यु हो जाती है तब ऐसा साधक पुण्यात्माओं को प्राप्त होने वाले लोकों में जाता है जहाँ पर वह उन कामनाओं का भोग भोगता है जिनके कारण उसे योगसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी। वहाँ वह योगसाधना में विघ्न

डालने वाली कामनाओं का भुगतान करने के बाद पुनः मृत्युलोक में धनवान तथा शुद्ध आचरण वाले माता–पिता के घर जन्म लेता है। अथवा योगी माता–पिता की सन्तान के रूप में जन्म लेता है। किंतु ऐसा जन्म दुर्लभ होता है। जन्म लेने के अनन्तर परमात्मा की कृपा से उसे पूर्व जन्म में की गयी योगसाधना के संस्कार अनायास प्रकट हो जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप वह पुनः योगसाधना में प्रवृत्त होकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। पूर्वजन्मों में किये अभ्यास के कारण शीघ्र ही उसकी योगस्थिति दृढ़ हो जाती है, चित्त सहजभाव में समाहित होकर समाधि की अवस्थाओं में प्रवेश कर जाता है। अतः भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि योग का जिज्ञासु भी शास्त्र के पंडितों से अधिक श्रेयस्कर होता है, क्योंकि उसका योग में शीघ्र प्रवेश हो जाता है। इसलिए योगसाधना में निरन्तर प्रयासरत साधक जब अपने अन्तःकरण को माया के समस्त विकारों से मुक्त कर लेते हैं तब इस प्रकार की अनेक जन्मों की साधना के फलस्वरूप परमात्मा की कृपा प्राप्त कर योगसिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं और आत्मसाक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जाते हैं। इस साधना की प्रक्रिया में सूत्र के सभी अवयवों की आवश्यकता तथा संस्कारों के अनुकूल योगदान सन्निहित है।

▣▣▣

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

अर्थात् पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

भक्ति की उपयोगिता

राम रतन तिवारी, दतिया

मानव मात्र में आनंद की खोज अनिवार्य रूप से होती रहती है। सांसारिक सुखों की सीमाओं से जब मानव निराश हो जाता है तब उसकी आत्मा में शाश्वत आनन्द की नैसर्गिक आकांक्षा उदित होती है। व्यक्ति को ऐसा आनन्द चाहिए जो असीम हो। बाहरी साधनों से, विविध प्रकार के सुखों की उपलब्धि तो होती है परंतु एक प्रकार के सुख की अनुभूति होने पर उसके मन में अन्य सुखों की कामना पैदा हो जाती है। चूंकि असीम और शाश्वत आनंद ही सर्वश्रेष्ठ है अत: उसकी खोज में वह अनेक प्रकार के अध्ययन, सत्संग और चिंतन का आश्रय लेकर आनंद की खोज में व्यस्त बना रहता है। ज्ञान मार्ग से यह तो समझ में आ जाता है कि संसार नश्वर है जो निरंतर परिवर्तनशील है। तब यह प्रश्न पैदा होता है कि जब कुछ भी स्थाई नहीं है तो उसमें सत्य को कहाँ पकड़ा जाए। वह जानना चाहता है कि जिस केन्द्र के चारों ओर संसार का वृत्त बन रहा है जिसकी परिधि पर संसार की सभी क्रियायें हो रही हैं वह मूल तत्व चेतन है और वास्तविक रूप में उसी का अस्तित्व है। इस सत् और चित् में आनंद का स्थाई भाव है। सच्चिदानंद का यह स्वरूप बुद्धिगत होकर भी अनुभूत नहीं हो पाता है। मूल ज्ञाता जो आत्म स्वरूप शुद्ध चेतन है उसे ज्ञान के माध्यम से ज्ञेय का बोध तो हो जाता है परंतु वह बोध अपरोक्ष नहीं होता। इस बोध को मन, बुद्धि ग्रहण करके बौद्धिक रूप में ज्ञान तो दे सकती है परंतु इसमें आत्म बोध का अभाव ही रहता है। इस आत्म बोध की अनुभूति के लिए ध्यान का आश्रय लेकर मन और बुद्धि की क्रियाओं को रोककर जो प्रयास होता है उसमें मन विचार शून्य होकर शांत रहता है। और केवल अस्ति के भाव की अनुभूति शेष रहती है। ऐसी स्थिति हो जाने पर चेतन की एक हल्की सी झलक अनुभूत हो जाती है।

उपरोक्त प्रक्रिया की सफलता विलग-विलग स्तर पर विभिन्न व्यक्तियों को होती है। परंतु ध्यान में अनुभूति इस अनुभव के पश्चात् व्यक्ति को व्यवहारिक संसार में तो लौटना ही पड़ता है। इस संसार में आते ही अंत:करण कार्यशील हो जाता है। मनोजनित अपनी सृष्टि में विभिन्न स्तर के क्रियाकलाप होने लगते हैं। इस कर्म क्षेत्र में संलग्न रहते हुए कर्म का छोड़ना सम्भव नहीं हो पाता। कर्म करने में मन को मायामय जगत में ही संचारित होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसका मन शुद्ध चैतन्य के परम सुख से बहुत दूर चला जाता है। मैं को मेरे से जोड़ने की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से चलती है और इस प्रक्रिया में शुद्ध मैं का विस्मरण हो जाता है। मन ने जीवन में विविध प्रकार की मान्यताओं का संग्रहण कर लिया है उनके प्रभाव में ही वह कार्यरत रहता है। ऐसी स्थिति में शुद्ध ज्ञान की अनुभूति की स्मृति तो रह सकती है परंतु

वह व्यवहार में सहायक नहीं हो पाती है। मन को विचार करने के लिए विषय का होना आवश्यक है। ये विषय सांसारिक ही होते हैं। इस तरह विकारों से बचकर व्यवहारिक जगत में कार्य करना कठिन हो जातमा है। मन है तो विचार होंगे ही, विचार होंगे तो विकार भी होंगे। अब शुद्ध परमात्म तत्व को कोई अवकाश ही उपलब्ध नहीं हो पाता है। हम चाहते हैं कि अंत:करण को कार्य भी मिल जाये और परमात्मा से संपर्क भी बना रहे। निर्गुण, निराकार शुद्ध चैतन्य का मन के साथ मेल नहीं हो पाता है। मन नाम रूप के बिना विषय को ग्रहण नहीं कर पाता है। मन को ऐसा परमात्मा चाहिए जो नाम रूपात्मक हो जिसके द्वारा वह अंत:करण की क्रियाओं के रहते हुए भी अपने प्रभु से जुड़ा रहे। जो परमात्मा निर्गुण और निराकार है उसमें नाम रूप नहीं है। इसलिए मन उसको शुद्ध रूप में ग्रहण नहीं कर पाता है।

मानव की इस आध्यात्मिक समस्या का निदान महात्माओं और ऋषियों ने भक्ति मार्ग के माध्यम से खोजा है। पूर्ण ब्रह्म को किसी भी नाम और रूप में मान्य करके मन में उसका स्मरण जप, कीर्तन, गायन, पूजन, आराधना आदि सम्भव हो जाता है। सगुण भाव में साकार ब्रह्म की कल्पना को श्रद्धा, आस्था और विश्वास के साथ मान्य करके भक्त के मानसिक और बौद्धिक क्षेत्र के लिए पूर्ण ब्रह्म का अवतरण कल्पित कर लिया जाता है। नाम रूप, लीला और धाम के चार भावों में भक्त अपने मन के माध्यम से अपने इष्ट देव से जुड़ा रहता है। भक्त के लिए सगुण और साकार भगवान पूर्ण ब्रह्म ही हैं। श्रद्धा और विश्वास के बल पर वह अपने अंत:करण में उनको पूरी सच्चाई के साथ मान्य करके उनके ध्यान में लीन बना रहता है।

भक्ति का क्षेत्र तर्क और बुद्धि का नहीं है। भक्त अपने भाव जगत में अपने सर्वाधिक प्रिय इष्ट देव का रूप स्वीकार कर सदैव उसके साथ विभिन्न भावों से जुड़कर अपने मन को उसमें लीन बनाए रखता है। प्रेम के जो लौकिक सम्बन्ध हैं उनको अपने इष्ट देव से जोड़कर भाव जगत में ऐसे आनंद रस की अनुभूति हो जाती है कि साधक उसे छोड़कर निराकार, निर्गुण शुद्ध चैतन्य के परमसत्य में विचार करने को भी तैयार नहीं रहता। प्रभु के साथ मन के ही माध्यम से वह गहन प्रेम रस में इतना डूब जाता है कि उसे अपना ही आपा भी भूल जाता है वह अपने अहं को पूरी तरह अपने इष्ट देव के प्रति समर्पित करके अहं शून्य हो जाता है। भक्त का जीवन उसके सारे कार्य कलाप उसका चिंतन और भावनाएँ सभी अपने इष्टदेव के लिए ही क्रियाशील रहती हैं।

भक्ति मार्ग के इस भाव के सम्बन्ध में भारत में अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न विचारों के माध्यम से इसे प्रभु से मिलने का ऐसा सुलभ मार्ग बताया है जिसमें व्यक्ति संसार में रहते हुए अंत:करण की क्रियाशीलता का पालन करते हुए भी परमानंद का सुधारस पान कर सके।

योग में प्रणव (ॐकार) महिमा

डा. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, हिमाचल प्रदेश

'तस्य वाचक: प्रणव:।।'

(पतंजलि योग दर्शन, 1/27)

अर्थात् उस ईश्वर का नाम प्रणव (ॐकार) है। हमारे पूर्वजों ने ओउम की महिमा खुले मन से कही है। यथा–

ॐ नाम सबसे बड़ा इससे बड़ा न कोय।
जो इसका सुमिरन करे शुद्ध आत्मा होय।।

अर्थात् उस परम पिता परमात्मा का वाचक नाम 'ॐ' है, इसका बार–बार स्मरण करते रहने से शरीर में स्थित आत्मा (जीवात्मा) पूर्ण शुद्ध, पवित्र बन जाती है। शास्त्रों में ईश्वर के नाम की महिमा खुले मन से गायी है। कहा भी जाता है 'राम' से बड़ा 'राम' का नाम' अर्थात् ईश्वर से महान ईश्वर के नाम जप की महिमा है। यथा–

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

गौस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में कहा है कि कलयुग में मनुष्य केवल राम नाम जपकर ही भवसागर से पार जा सकते है, ऐसी कलियुग की महिमा है। यथा–

राम नाम नरकेशरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल।।

(बालकांड–27)

अर्थात् राम नाम श्री नृसिंह भगवान है, कलियुग हिरण्यकशिपु है और जप करने वाले मनुष्य प्रहलाद के समान है, यह राम नाम देवताओं के शत्रु (कलियुग रूपी दैत्य) को मारकर जप करने वालों की रक्षा करेगा। योगेश्वर ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्ण जी महाराज ने गीता में स्वयं कहा है–

महरिषियन्ह भृगु ब्रह्माकुमारा। वचनंह माहिं होउँ ओंकारा।
सबन्ह माहि जपमख मैं होऊ। थिरन्ह माहिं जो हिम गिरि सोऊ।।

अर्थात् मैं महर्षियों में भृगु और शब्दों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ। सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूँ। अत: ॐकार उस परमात्मा का वेदोक्त नाम है। यथा–

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणा स्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।

(गीता 17/23)

अर्थात् ॐ तत, सत– ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्द घन ब्रह्म का नाम कहा है; उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये। यही कारण है; वेद मंत्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्र विधि से नियत यज्ञ, दान, तपरूप क्रियायें सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके आरम्भ होती है।

अतः ॐकार ही ब्रह्म है। यह परमात्मा का स्वयं सिद्ध नाम है। योगी महापुरुष समाधि में पहुँच कर ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। उन्हें प्रकृति के उच्च अन्तराल में ओंकार ध्वनि सुनाई देती है। घड़ियाल पर चोट मारने से जैसे ध्वनि काफी देर तक झनझनाती है, उसी प्रकार ॐकार ध्वनि (नाद) सुना जाता है। इस नाद को ही मुनियों ने ईश्वर का स्वयं सिद्ध नाम कहा है और उसे शब्द कहा है। इस शब्द से रूप बनता है। शब्द से कम्पन सीधे चलकर वाहिनी और मुड़ जाते हैं। शब्द अपने केन्द्र की धुरी पर भी घूमता है, इसी प्रकार वह चारों तरफ घूमता है। इस भ्रमण, कम्पन, गति और मोड़ के आधार पर स्वास्तिक बनता है, यह स्वस्तिक ओंकार का ही रूप है। ओंकार को ही प्रणव कहते हैं। यह सब मंत्रों का हेतु भूत है। किसी भी शुभ कार्य में, पूजन में, शास्त्रविधि में सबसे पहिले ॐ का ही नाम लिया जाता है। ओंकार से व्याहृतियाँ उत्पन्न हुई और व्याहृतियों से तीनों वेद उत्पन्न हुए। यथा–

भूरित्येव हि ऋग्वेदो भुवः इति यजुस्तथा।
स्वरिति सामवेदः स्यात् प्रणवो भूर्भुवः स्वः।।

(गायत्रीसाधना, 1:7)

अर्थात् भूः से ऋग्वेद, भुवः से यजुर्वेद तथा स्वः से सामवेद उत्पन्न हुए। ओंकार सप्तलोकों की ब्रह्मस्वरूपता का द्योतक है। 'ॐ' में सभी वेदों का सार भरा पड़ा है।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरहद् भूर्भुवः स्वरतीति च।।

अर्थात् "ब्रह्माजी ने अकार, उकार, मकार अर्थात् 'ॐ' को भूर्भुवः स्वः को तीन वेदों से निकाला था। योग मार्गियों को ओंकार सदैव मोक्षदायक है। यथा–

ओंकार बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः।।

अर्थात् योगी पुरुष अनुस्वार युक्त ओंकार का सदा ध्यान करते हैं। अतः समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा मोक्षदायक ओंकार को हम नमस्कार करते हैं।

प्रणव से भगवान सदाशिव के पञ्चाक्षरी मंत्र की उत्पत्ति हुई है। अकार से (न), उकार

से (न:), मकार से (शि) बिन्दु से (वा) तथा नाद से (य) की उत्पत्ति हुई है। एकाक्षर 'ॐ' की उत्पत्ति भगवान शिव के मुख से बताई गई है।

पंचमुखी महादेव के पाँच मुख वेद–पुराणों में कहे गये है। अत: उनके उत्तर मुख से अकार, पश्चिम से उकार, दक्षिण से मकार, पूर्व मुख से बिन्दु तथा मध्य मुख से नाद निकला बताया गया है। विद्येश्वर संहिता (8/16/20) में वर्णित है।

ओंकार को ईश्वर वाचक प्रणव क्यों कहा गया, इसके बारे में प्र (प्रपंच) न (नहीं है), व (तु में) अर्थात् जिसे जपने से संसार का प्रपंच नहीं रहता, इसलिए प्रणव कहा गया। दूसरे में बताया गया है कि प्र (प्रकट रूप से), न (मोक्षदायक है), व (जपने वाले को) इसलिए इसे प्रनव (प्रणव) कहा है। प्रणव जाप सब कर्मों का क्षय कर के मोक्ष प्रदान करता है।

प्रणव जप, जपने वाले को माया रहित कर देता है। जपने वाला पवित्र, नवीन हो जाता है, इसलिए प्रणव कहलाता है।

ओंकार तीन अक्षरों से मिलकर बना है। अ+उ+म मिलकर ॐ बना है। अ (अकार), शिव लिङ्ग है, उ (उकार) जलहरी है तथा म (मकार) शिव शक्ति का सम्मिलित रूप है।

एक ओंकार (ॐ) में तीन देव शक्तियाँ समाहित है। अकार में ब्रह्मा, उकार में विष्णु तथा मकार में शिवजी विराजमान हैं। अत: ओंकार पूरी सृष्टि के द्योतक हैं। मूल में ब्रह्मा, मध्य में श्री विष्णु तथा शिखर में महेश विराजमान है।

इसी तरह शिव के त्रिशूल की स्थिति है। त्रिशूल के तीनों शूलों में ब्रह्म, विष्णु तथा महेश की शक्तियाँ है। तीनों शूलों को जोड़ने वाला हत्था नाद तथा बिन्दु का काम करता है।

ओंकार के तीनों अक्षर अ+उ+म क्रमश: सात्विक, राजस तथा तामस गुणों की प्रधानता बतलाते है। सारांश में एक ओंकार ही पूरी सृष्टि का आधार है। ॐ–ॐ जपने से ब्रह्म तत्वों की मात्रा शरीर के अन्दर बढ़ती रहती है जिससे आत्मा नित्य नई चेतना पाकर प्रफुल्लित रहा करती है। मुखमण्डल ओजस्वी, आगामयी केशरी रंग सा परिलक्षित होता है। जपने वाले में प्राय: मधुरता तथा सात्विक भाव जाग जाते है, उसके दैनिक व्यवहार में परिवर्तन हो जाया करता है। मन: स्थिति तथा चित्त शांत हो जाता है। जिसके फलस्वरूप प्राणी स्वर्ग, मंगल, मोक्ष, अजरता, अमरता, निडरता संशय रहित, मनोजयता की तरफ अग्रसर होने लगता है। प्राणी ईश्वर से निकटता बढ़ाने लगता है। अमंगल भाव दूर होने लगते है। प्रबल इच्छा शक्ति वाला बन जाता है तथा आत्मबल उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है। जैसे रस्सी को पकड़कर चलने वाला रस्सी के छोर तक पहुँच जाता है, ठीक उसी भाँति प्रणव जपने वाला परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। यथा–

ॐ इति स्मरणेनैव ब्रह्मज्ञानं यतावरम्।
तदेकं मोक्ष सिद्धिं च लभतोमृतमश्नुते।।

अर्थात् प्राणी 'ॐ' के उच्चारण मात्र से ब्रह्म ज्ञान की पराकाष्ठा, मोक्षता तथा अजर–अमरता को प्राप्त कर लेता है।

प्रणवे विनिस्य व्याहृतीषु च सप्तसु।
त्रिपदायां च गायत्र्यां न भयं विद्यते क्वचित्।।

अर्थात् ओंकार में सप्त व्याहृतियों में तथा गायत्री के त्रिपद युक्त पुरुष को भय कहीं नहीं होता है।

ॐ निर्भय ब्रह्म है अतः अपने मन को सदैव प्रणव में युक्त करें। प्रणव में लीन प्राणी को कभी भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है तथा मन स्वयं निश्चल हो जाता है, जैसे–

बुद्धि तत्वेन धीशून्यं मौन मेकान्त वासिना।
दीर्घ प्रणवच्चार्य मनो राज्यं विजीयते।।

अर्थात् ॐ के निरंतर जाप से मौनी बुद्धि के कारण इधर–उधर भटकते हुए मन पर आधिपत्य प्राप्त कर लेता है।

ॐ इत्येकाक्षरः ध्यानात् विष्णुविष्णुत्वमाप्तवान्।
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्नः शिव तामभवत शिवः।।

अर्थात् 'ॐ' इस एकाक्षर मंत्र के ध्यान से ब्रह्मा ब्रह्मात्व को, विष्णु विष्णुत्व को तथा शिव शिवत्व को प्राप्त हुए हैं। वेद भगवानों का आदेश है कि प्राणी सदा 'ॐ स्मर' का ही जाप करता रहे। ओउम एक महान सर्वव्यापी मंत्र है। यथा–

ॐ समान मंत्र नहीं कोई।
अक्षर ब्रह्म कहावै सोई।।

(ओंकार चालीसा)

अर्थात् 'ॐ' के समान कोई अन्य मंत्र नहीं हो सकता। 'ॐ' एक अक्षर का ही ब्रह्म की शक्ति वाला मंत्र है।

ॐ ब्रह्म परमात्मा निराकार साकार।
सिद्धि बुद्धि दायक सतत् प्रनवों बारंबार।।

अर्थात् 'ॐ' उस परब्रह्म परमात्मा दोनों साकार तथा निराकार रूपों में व्याप्त है। इसके स्मरण से प्राणी धन, दौलत से भरपूर शुद्ध बुद्धि वाला बन जाता है। अतः बार–बार प्रणव (ॐ) का जप करते रहना चाहिए।

ओंकार का जप मनुष्य की विषय वासनाओं का नाश कर देता है। अतः हमें ॐ का अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर है। मनुष्य इसके सहारे ब्रह्म लोक के सारे रहस्य जानने में सक्षम हो जाता

है। अत:–

ॐ स्मरणात कीर्तनाद्वापि श्रवणाच्च जपादपि।
ब्रह्मतत्प्राप्यते नित्ययोमित्येतत्परायण:।।

अर्थात् ॐ के स्मरण, कीर्तन, श्रवण और जप से उस परब्रह्म को मानव प्राप्त हो जाता है, अत: हमें 'ॐ' में परायण होना ही चाहिए। यथा–

तैलधारामिवाछिन्नं दीर्घघण्टा–निनादवत।
उपास्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वदेवित।।

निरंतर गिरती तेलधारा के समान या घड़ी के शब्द के सदृश्य यथार्थता से सदैव विचारधारा में जो निमग्न रहता है, वही वेदवेत्ता है। 'ॐ' सभी मंत्रों का सेतु है। इस पुल पर चढ़कर ही मंत्र मार्ग को पार किया जा सकता है। अत: कोई मंत्र पूर्ण सफल तभी हो पाता है जब वह मंत्र ॐ से युक्त होता है।

यदोंकार मकृत्वा किंचिदार तन्नजो भवति।
तस्माद्वजाभयाद भीत ओंकार पूर्वमारभेदिति।।

अर्थात् बिना ओंकार का उच्चारण किये सभी कार्य वज्रवत अर्थात् निष्फल हो जाते है, अत: वज्रभय से डर कर प्रथम 'ॐ' का उच्चारण करें।

ॐ शब्द आप्लृ व्याप्तौ और अव रक्षते धातु से सिद्ध होता है। आप्लृ धातु से निर्मित ॐ का अर्थ सर्वव्यापी होता है और अव धातु से निर्मित ॐ का अर्थ संसार सागर से रक्षा करने वाला होता है। ॐ के सामान्यत: निम्न अर्थ होते है, जैसे–

1. रक्षण– संसार सागर से रक्षा करता है। 2. गति–अवति–सर्वजानाति–सर्वकाल में समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञाता है। (क) यति–संसार चक्र को चलाने वाला है। (ख) गति–सर्वत्र व्यापक है। (ग) गति– विश्व मर्यादा को चलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील है। 3. कान्ति–संसार को प्रकाशित करने वाला है। 4. प्रीति–भक्तों को आनन्दित करने वाला है। 5. तृप्ति–भक्तों को सन्तुष्ट करने वाला है। 6. अवगम–प्राणियों के विचारों को जानने वाला है। 7. प्रवेश – आत्मस्वरूप प्राणियों में प्रवेश करने वाला है। 8. श्रवण–सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा गुप्त से गुप्त रहस्यों को सुनने वाला है। 9. स्वाम्यर्थ–सम्पूर्ण जगत का स्वामी होने के कारण सब पर शासन करने वाला है। 10. याचन–सभी प्राणियों का आश्रय स्थान–याचनायें पूर्ण करने वाला है। 11. इच्छा क्रिया–सांसारिक क्रियाओं का संचालक है। 12. इच्छति–सभी जीवों की इच्छा पूर्ण करने वाला है। 13. दीप्ति–ज्ञान स्वरूप होने के कारण, अज्ञानता को दूर करने वाला है। 14. वाप्ति–अणु–अणु में व्याप्त, पवित्र अन्त:करण में स्वरूप प्रदर्शक है। 15. आलिंगन–व्याप्त भाव से सब का सम्बन्धी है। 16. हिंसा – अज्ञानता का हिंसक है। 17. दान–सद्बुद्धि का दाता है। 18. भोग – प्रलय के समय स्थूल जगत को अदृश्य अर्थात् अपने

में लीन करने वाला है। 19. बुद्धि–सृष्टिकाल में सूक्ष्म प्रकृति को स्थूल पथ पर लाने वाला है।

यह ॐ अव्यय वाचक है। इसके सामने कोई भी प्रत्यय विभक्ति आते ही अपने आप नष्ट हो जाती है। अतः यह अविनाशी है। अतः 'ॐ' के जपने से प्राणीमात्र को संसार की सभी कामनायें पूरी हो जाती है। ऐसा कुछ भी नहीं जो अप्राप्त हो। इसलिए–

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

(पतंजलि योगदर्शन, 1/28)

उस ॐकार का जप और उसके अर्थस्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। अर्थात् जप करते समय ईश्वर के स्वरूप इत्यादि का चिन्तन भी करें तभी पूर्ण सफलता मिल सकेगी। इसे ही ईश्वर शरणागति, ईश्वर की भक्ति या ईश्वर प्राणिधान कहते हैं। ॐकार जप प्राणी मात्र को भवसागर से पार कर देता है। यथा–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता 8/5–6)

अर्थात् जो पुरुष अन्तकाल में मुझको स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस–जिस भी भाव का स्मरण करता है और शरीर त्याग करता है, उस उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित होता है। यथा–

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

गीता, 8/11–12

सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर तथा मन को हृदय देश में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके, परमात्मा सम्बन्धी योगधारणा में स्थिर होकर जो प्राणी 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह पुरुष परम गति को प्राप्त करता है।

श्री गीतामृत - पदावली

प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

हे अर्जुन! विद्वान जनों के कोटि यत्न करते करते।
यही हठीली इन्द्रिय उनके, मन को बलपूर्वक हरते।।60।।

इन्हें रोक, मन सुस्थिर करके, भक्त हमारे जो रहते।
इन्द्रियगण को वश में रखते, स्थितप्रज्ञ उन्हें कहते।।61।।

मन में लाता विषय लालसा विषयों का चिन्तन अविराम।
विषय लालसा काम बढ़ाती, मूल क्रोध का होता काम।।62।।

मोहोत्पन्न क्रोध से होता, तथा मोह से ज्ञान–विनाश।
अज्ञानी को बुद्धि न रहती, बुद्धि–नाश से पूर्ण विनाश।।63।।

राग द्वेष से मुक्त पुरुष का, विषयों में रह कर भी लीन।
उर निर्मल हो जाता जिनके, मनइन्द्रिय दोनों आधीन।।64।।

मन निर्मल रहने पर उनके, नष्ट सभी दुख हो जाते।
वे प्रसन्नता–प्राप्त पुरुष तब, अविचल बुद्धि तुरत पाते।।65।।

योग हीन पुरुषों को अर्जुन बुद्धिभावना नहीं यहाँ।
बिना भावना शांति न मिलती, शांति बिना सुख कहो कहाँ।।66।।

मन इन्द्रिय के पीछे चलता, जब विषयों में रहता ध्यान।
वही बुद्धि को खींचे फिरता, जैसे वायु नाव को जान।।67।।

अतः पार्थ! जो इन्द्रियगण का, निग्रह सदा किए रहते।
रखते दूर विषय से इनको, स्थितप्रज्ञ उन्हें कहते।।68।।

रात सबों की जब होती है, योगी जागे रहते तात!
जीव सभी जब जागा करते, ज्ञानी मुनि की होती रात।।69।।

धीर, अचल, गम्भीर जलधि–सा, नीर जहाँ भरता रहता।
विषयों से अविचल नर पाता शांति, न कामी जन पाता।।70।।

कामनायें त्याग कर जो नर विचरता नित्य ही।
मोह ममता रहित अर्जुन शान्ति पाता है वही।।71।।

ब्राह्मी स्थिति यही पार्थ है, पा इसको हटता अज्ञान।
अन्त समय भी इसमें स्थित, ब्रह्म प्राप्त हो वही सुजान।।72।।

आदरणीय श्री खड्डर जी पर कृपा

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

परम आदरणीय गुरुभाई श्री खड्डर भाई साहब का पूरा नाम ईश्वरी प्रसाद खड्डर था। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव भगवान के लाड़ले शिष्य थे। उनकी आध्यात्मिक शक्ति का अनुभाग, गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के मुखारविन्द से निकले इन वाक्यों से लगाया जा सकता है, जिसमें हमारे–आपके आराध्यदेव ने कहा था कि, "हमारा एक बच्चा है जिसका नाम ईश्वरी प्रसाद खड्डर है; जो भी प्राणी उसके पास आता है; उसके मन की पूरी बात जान लेता है। वह सिर्फ हमारे मन की बात को नहीं जानता। पास आने वाला, प्रत्यक्ष रूप से वास्तविकता में मिलावट करता, तो वह हकीकत जानकर मुस्करा दिया करता है।" परम आदरणीय गुरुभाई श्री खड्डर भाई साहब श्री गुरुदेव भगवान के पूर्व जन्म के ही संस्कारी बच्चे थे। इस जन्म में श्री आराध्यदेव ने उन्हें कैसे श्री प्रभु जी की शरण में बुलाया, उन पर कैसी–कैसी अलौकिक क्रियाओं द्वारा कृपा की एवं उनके अन्दर क्या आध्यात्मिक शक्ति एवं सामर्थ्य था, इसको समझना एवं समझाना ही इस कृपा प्रसंग का उद्देश्य है, जिससे नवागन्तुक योग जिज्ञासु लाभान्वित हो सकें।

आदरणीय भाई साहब श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी की ससुराल दतियाँ में थी। उनकी धर्मपत्नि एक बेहद अच्छी गृहणी होने के साथ ही महान धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणामस्वरूप उन्हें बोन टी.बी. का रोग हो गया। हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री ईश्वरी प्रसाद जी ने उनका सरकारी ख्याति प्राप्त अस्पतालों एवं प्राइवेट डाक्टरों एवं नर्सिंग में खूब इलाज करना आरम्भ किया, परतु रंचमात्र भी लाभ नहीं हुआ। संक्षेप में उन्होंने चिकित्सा की सभी प्रचलित पद्धतियों अंग्रेजी, आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक और यूनानी विधि से इलाज करवाया परतु रंचमात्र भी लाभ नहीं हुआ परतु रोग की गम्भीरता में कुछ इजाफा ही हुआ। एक स्थिति ऐसी भी आयी कि डाक्टरों ने श्रीमती खड्डर को लाईलाज घोषित कर दिया। आदरणीय खड्डर भाई को पूर्ण रूपेण विश्वास हो गया कि इनकी धर्मपत्नी चन्द दिनों की मेहमान है। ये बड़ा निराश एवं उदास रहने लगे। डाक्टरों ने इनकी धर्मपत्नी को खाना न खाने की सलाह दिया एवं कहा कि आप केवल जीवन जीने हेतु पेय पदार्थ जैसे फलों का रस, जूस एवं पानी में घोलकर केवल टानिक ही ले सकती हैं। तदन्तर श्रीमती खड्डर जी ने इन्हीं खाद्य पदार्थों के सहारे जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। उस समय दतियाँ शहर में मात्र पाँच प्राणी दीक्षित थे। दो सपत्नीक एक आदमी अकेला दीक्षा लिया था। दतिया शहर में मात्र तीन घरों में आराध्यदेव योगेश्वर द्वय का आरती पूजन

होता था। हमारे ये भाई–बहन आपस में श्री गुरुदेव भगवान की लीलाओं एवं कृपाओं का खूब वर्णन किया करते थे। एक बात और थी कि इन लोगों के सम्पर्क में आने वाले प्राणी जब घोर विपत्ति या महान कष्ट दायक रोग की चपेट में आते थे, हमारे ये गुरुभाई–बहन उन्हें श्री गुरुदेव के पास कष्ट निवृत्ति या रोग निवारणार्थ जाने का परामर्श देते थे। श्री गुरुदेव उन दिनों ज्यादा समय योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पर ही विराजमान रहा करते थे। श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पर जाने एवं श्री गुरुदेव भगवन के आशीर्वाद प्रसाद एवं उनकी आज्ञाओं का पालन करने का प्रयत्न करने पर उन्हें लाभ भी अवश्य होता ही होता था। तभी तो हमारे एक गुरुभाई ने कहा है कि–

गया न खाली कोई सवाली।
प्रभु श्री रामलाल दरबार से।।

इस प्रसंग के तारतम्य में अपने आदरणीय गुरुभाई श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी के शारीरिक बनावट के सम्बन्ध में बताया, नवागन्तुक योग जिज्ञासुओं एवं श्री गुरु–बहनों एवं भाई को, जो आराध्यदेव की अशरण–शरण में सन् उन्नीस सौ अस्सी या उसके बाद आये हैं, आवश्यक है। हमने भी उनसे शरीर का दर्शन सतहत्तर के दशक में ही किया था और यह उनका वृद्धावस्था का समय था। आदरणीय भई जी की ऊँचाई (लम्बाई), औसत लम्बाई से कुछ ज्यादा थी। गेहुंआ रंग एवं मज़े–मजाये पहलवान की तरह स्वस्थ एवं गठीला शरीर आदरणीय भाई जी का था।

परम आदरणीय गुरुभाई श्री खड्डर भाई साहब अपनी ससुराल गये थे एवं अपनी धर्मपत्नी का इलाज अब नये डाक्टर से कराने का विचार कर रहे थे, क्योंकि जिस डाक्टर की दो माह से दवा चल रही थी, उससे तनिक भी लाभ नहीं था। आदरणीय भाई जी धर्मपत्नी की बीमारी से काफी परेशान, निराश एवं उदास थे। दतियाँ शहर के एक हमारे गुरुभाई से, जिससे इनकी मित्रता थी अचानक मुलाकात हो गई। उचित अभिवादन के बाद हमारे उस भाई ने प्रश्न किया कि भाई साहब आप बड़े उदास से दिखलायी दे रहे हैं, क्या बात है? आदरणीय खड्डर भाई साहब ने पास ही में स्थित दुकान पर मित्र के साथ चाय पीते–पीते पूरी विपदा का वर्णन मित्र को सुना दिया। इनकी पूरी विपद कहानी सावधान मन से सुनने के बाद, इनके मित्र एवं हमारे आप के पुराने गुरुभाई ने कहा, 'आगरा जनपद में एत्मादपुर तहसील है एवं वहीं से बरहन गाँव को सड़क जाती है; उस सड़क पर बांयी तरफ एक योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई के नाम का है। उस योगाश्रम के संरक्षक एवं संचालक एक योगीराज जी हैं। वे रोगियों का मुफ्त इलाज किया करते हैं एवं उनके यहाँ जाने वाला रोगी अब तक निराश नहीं लौटा है, उससे रोगी को अवश्य ही कुछ न कुछ लाभ ही लाभ हुआ है। अतः मेरी राय तो यह है कि तुम भी वहाँ जाकर उस रोगीराज जी से रोग विवरण बताकर उसके निवारणार्थ प्रार्थना करो। हमें पूर्ण विश्वास है कि अवश्य ही लाभ

होगा। श्री खड्डर भाई जी ने आश्रम का नाम, वहाँ पहुँचने का पूरा-पूरा विस्तार से वर्णन, हमारे गुरुभाई एवं अपने मित्र से पूछकर नोट कर लिया। अपने मित्र से विदा लेकर ये अपने ससुराल वाले घर पर आ गये। सर्व प्रथम अपनी सहधर्मिणी पत्नी को बतलाये, एवं फिर अपने सास-श्वसुर को बतलाये। इनकी सास ने कहा कि कल तक वहाँ रुकने एवं खाने का प्रबन्ध कर लेते हैं एवं तुम, मैं एवं यह (खड्डर साहब की पत्नी) साथ परसों उस आश्रम पर चलेंगे। इनके श्वसुर एवं सालों ने भी एक स्वर से इस प्रस्ताव का पूरा-पूरा समर्थन किया। अगले ही दिन श्री सवांई आश्रम जाकर, वहाँ के योगीराज से रोगनिवृत्ति के लिए प्रार्थना करने की बात तय हो गई।

दतिया शहर में हल्का नाश्ता करके तथा दोपहर एवं सायंकाल का भोजन लेकर परम आदरणीय श्री खड्डर भाई साहब अपनी सास एवं रोगी धर्मपत्नी के साथ श्री सवांई धाम की यात्रा आरम्भ किये एवं सायंकाल सूर्यास्त होते-होते श्रीसवांई धाम पहुँच गये। श्री सवांई धाम आश्रम में प्रवेश करते ही इन्हें एक गृहस्थ भेषधारी हट्ठा-कट्ठा गठीले बदन का स्वस्थ आदमी मिला जो कुँए पर पूजा वाले बर्तन (ज्योति पात्र, तस्तरी एवं लोटा आदि) खूब चम-चमाता हुआ माजकर कुएं के चबूतरे का कुछ भाग पानी से साफ करके रख चुका था एवं खाने के जूठे बर्तन मांजने (साफ करने) के लिए कुएं से पानी निकाल रहा था। परम आदरणीय भाई श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर साहब ने प्रश्न किया, 'क्यों भाई! यहाँ कोई योगीराज जी रहते हैं। यदि रहते हैं तो वे कहाँ मिलेंगे।' उस आदमी ने मधुर मुस्कान के साथ कहा, 'श्री सिद्धगुफा मन्दिर के सामने बैठ जाओ। श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम (योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा) से सम्बन्धित हमारे प्रबुद्ध भाई-बहन अब इस रहस्य को अच्छी प्रकार से पूर्ण रूपेण समझ गये होंगे कि पूजा के बर्तन साफ करने के बाद, जूठे बर्तन को साफ करने के लिए पानी निकालने वाले और किसान की भेषभूशा वाले पुरुष कोई और नहीं बल्कि कालचक्र, युगचक्र और जगचक्र को एक साथ चलाने वाले, पूर्ण योग योगेश्वर धोती कुर्ता धारी हमारे आपके सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ही थे। श्री खड्डर भाई साहब अपने साथ आये प्राणियों के साथ श्री गुफा के सामने जमीन पर बैठ गये। धोती-कुर्ता धारी मनुष्य सर्व प्रथम पूजा वाले बर्तन श्री गुफा में रखा एवं तदन्तर साफ किये गये भोजन वाले बर्तन रसोई घर में रखा। कुंए से पानी निकाल कर अपने हाथ-पैर धोये एवं बाल्टी को अच्छी प्रकार से साफ करके गुफा के सामने पानी भरकर रख दिया एवं उसके बाद पाल्थीमार इन लोगों के पास बैठकर बोला, 'बोलो लल्ला! कहाँ से आये हो क्या कार्य है।' श्री खड्डर भाई को विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने कहा, 'अरे भाई! हम तो यहाँ रहने वाले योगीराज से अपने रोग निवारणार्थ प्रार्थना करने आये हैं।' आराध्यदेव ने हँसते हुए कहा, 'हम ही तो इस आश्रम पर रहते हैं। यह आश्रम हमारे गुरुदेव योग-योगेश्वर स्वतंत्र ईश्वर श्री रामलाल जी महाराज द्वारा स्थापित है। तुम अपना कष्ट बतलाओ, हो सकता है, मेरे द्वारा कराये गये साधन से

कुछ लाभ हो जाये।'

आश्चर्य! महान आश्चर्य!! योग की पूरी शक्तियों से पूर्णरूपेण लबालब भरा व्यक्तित्व, स्वयं को अपने श्री गुरुदेव का कारिन्दा (आज्ञा पालक नौकर) बयान कर रहा है। यह हमारे जैसे नासमझ गुरुभाईयों के लिए अनुकरणीय ब्रह्मवाक्य है। अपने को ऐसा बनाओ तो शिष्य कहलाने के अधिकारी हो। तुम्हारा कुछ है ही नहीं। ऐसा माना नहीं, इसे जानना है।

आराध्यदेव के उपरोक्त अमोघ वाक्य सुनकर आदरणीय खड्डर भाई साहब को पूर्ण विश्वास हो गया कि साधारण से दिखने वाले धोती–कुर्ता धारी यही व्यक्ति सिद्ध योगिराज हैं, जिनकी हमें तलाश थी। उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया एवं उनका अनुसरण करते हुए उनके साथ गयीं दोनों महिलाओं ने प्रणाम किया। सूर्यास्त हो गया था। कुछ समय बाद योगिराज जी ने गुफा में विराजित महाप्रभु के स्वरूपों के सामने बैठकर पाँच भजन गाये एवं उसके बाद महाप्रभु जी के स्वरूपों की बड़ी देर तक आरती की। आरती के पश्चात् रसोई घर में गये एवं उरद तथा चना की मिश्रित दाल बनायी एवं फिर मोटी–मोटी दस रोटियां बनायीं। श्री गुफा सवांई धाम में विराजीत स्वरूपों को भोज्य पदार्थों का भोग लगाया एवं फिर आवाज लगायी, लल्ला! तुम सभी आ जाओ, भोजन कर लो। आराध्यदेव स्वयं अपने कर–कमलों द्वारा सबकी थाली में दाल एवं मोटी–मोटी दो–दो रोटी परोसे एवं भोजन करने का आग्रह किये। आदरणीय भाई जी ने अपने साथ खाना होने की बात बतलायी तो श्री गुरुदेव ने कहा कि लल्ला! यह प्रभु जी के भण्डारे का प्रसाद है, इसे खाओ। अपने पास वाले भोजन को गोशाला के गायों को खिला देना या बाद में कभी खा लेना। इस समय तो भण्डारे का श्री प्रभु जी का प्रसाद ग्रहण करो। श्री गुरुदेव भगवान के दोबारा कहने के बाद भी कोई भोजन करना आरम्भ नहीं किया परंतु तीनों एक दूसरे की तरफ देख रहे थे। आराध्यदेव जी ने तीबारा कहा कि लल्ला! प्रसाद ठण्डा हो रहा है इसे खा लो। अबकी बार भाई जी ने सकुचाते हुए कहा, 'महात्मा जी! इन्हें (अपनी पत्नी की तरफ इशारा करते हुए) डाक्टरों ने खाने से मना किया है। केवल तरल प्रकार की खाद्य सामग्री ही खाने की सलाह दी है।

उनकी अधीरता पूर्ण बातें सुनकर आराध्यदेव जी ने कहा, 'तुम सब लोग खाओ लल्ला! श्री प्रभु जी के भण्डारे का प्रसाद है, बिल्कुल ही नुकसान नहीं करेगा।' आराध्यदेव के इतना कहने के बाद भी, जब किसी ने भोजन करना आरम्भ नहीं किया तो श्री गुरुदेव भगवान ने आदरणीय भाई जी से पूछा कि (औरतों की तरफ इशारा करके) ये कौन हैं? भाई जी ने बतलाया कि यह हमारी पत्नी है, जिसके इलाज के लिए हम आपके पास आये हैं और यह हमारी सास हैं। भाई जी की बात सुनने के बाद श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'लल्ला! तुम सब लोग निर्भय होकर भोजन करो। यह तुम्हारी पत्नी है और इसकी

तबियत खराब है। वैसे तो यहाँ कुछ भी अमंगल नहीं होना चाहिए पर मान लो यदि यहाँ यह मर गयी, तो तुम उसके पति हो, उसके साथ हो एवं यह श्री प्रभु जी का परम पुण्य क्षेत्र है, यदि संस्कारवशात् मोक्ष नहीं हुआ तो दिव्य स्वर्ग लोक में जायेगी। अतः चिन्ता की कोई बात नहीं, तुम लोग भोजन करो।'

आराध्यदेव जी की ये बातें सुनकर तीनों भोजन करना आरम्भ किया। दो आदमी तो दो–दो मोटी वाली रोटी खाये परंतु भाई जी की धर्मपत्नी ने एक और रोटी श्री गुरुदेव भगवान से मांगा एवं अपनी थाली का सब सामान खा गयी। आराध्यदेव जी ने अपनी थाली एवं भोजन बनाने वाले पात्रों को साफ किया एवं श्री भाई जी की पत्नी ने अपने तथा साथ आये प्राणियों का बर्तन साफ किया। उसके बाद आराध्यदेव जी ने बिस्तर देकर सोने को कहा, यह कहते हुए कि रोग की बाबत सवेरे बात करेंगे। सब लोग आश्रम पर रात्रि विश्राम किये। लगातार कई दिनों से अनिद्रा का कष्ट झेल रही आदरणीय भाई जी की पत्नी को पहली बार भरपूर नींद आयी। प्रातःकाल उसे जगाने के लिए कई बार आवाज लगानी पड़ी एवं उसने अपने पतिदेव तथा माँ से कहा कि कई महिने बाद, मुझे नींद का आनन्द मिला है।

दूसरे दिन प्रातः काल नैतिक क्रिया से निवृत्त होकर आराध्यदेव जी ने अखिलेश्वर, परम योगयोगेश्वर अपने गुरुदेव श्री प्रभु जी, (हमारे आपके दादा गुरुदेव) महाप्रभु श्री रामलाल जी की आरती की। उसके बाद बुलन्द आवाज में श्री मद्भागवत् गीता के दो अध्यायों का पाठ किया एवं पूरा जीवन तत्व साधन किया। जीवन तत्व साधन में चौथी क्रिया नाभि चालन करने का समय पन्द्रह मिनट का है, परंतु आराध्यदेव ने उसे आधा घंटा किया। तदनन्तर लगभग दो घंटा ध्यान में बैठे रहे। उसके बाद नैतिक क्रिया से निवृत्त होकर गुफा के सामने बैठे भाई जी को, सबके साथ अपने पास बुलाया एवं अपने मुखारविन्द से कहा, 'हाँ लल्ला बतलाओ! कैसे आना हुआ।' आदरणीय भाई जी ने हमारे उस परम आदरणीय गुरुभाई का सम्बन्ध बताते हुए, अपनी पत्नी की पूरी व्यथा–कथा की दास्तान श्री चरणों में निवेदित किया। आराध्यदेव ने कहा, लल्ला! इसे नित्य नेती करनी पड़ेगी, नाक से दूध पीना पड़ेगा एवं जीवन तत्व साधन करना पड़ेगा। यदि यह ऐसा करेंगी तो श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं यह लल्ली अवश्य–अवश्य स्वस्थ हो जायेगी। उपरोक्त सभी क्रियाओं से आदरणीय भाई जी पूर्णतया अनभिज्ञ थे, अतः केवल मात्र, जी महाराज जी, जी महाराज जी कह रहे थे। उसके बाद श्री गुरुदेव भगवान अपने स्थान से उठकर गुरुभवन में गये, पतली नेती लाकर बाल्टी के पानी में डाल दिये। लगभग पन्द्रह मिनट बाद नेती निकाल कर, भाई साहब की पत्नी को स्वयं अपने कर–कमलों द्वारा सूत्र नेती कराये, फिर जल नेती कराये एवं नाक से करीब एक पाँव दूध पिलाये उसके बाद श्री गुरुदेव भगवान से जीवन तत्व साधन की एक–एक क्रिया स्वयं किया एवं उससे करवाया। इस प्रकार उसे पूरा जीवन तत्व साधन

सिखाया। जीवन तत्व की पूरी क्रिया उससे एक बार दोबारा कराकर अभ्यास कराया। इन लोगों द्वारा जाने की बात करने पर यह कहा, 'लल्ला! आज रुक जाओ। कल इन यौगिक क्रियाओं का अभ्यास कर लेगी एवं तुम सब परसों प्रात काल ही चले जाना।'

तीसरे दिन इन लोगों को विदा करते समय स्वयं अपने हाथों से पराठा एवं चीनी का भूरा प्रचुर मात्रा में देते हुए, यह कहना कि लम्बा सफर है, भूख लग जायेगी। जब भूख लगे इसे खा–पी लेना। आराध्यदेव ने मनोहारी मुस्कान से प्रश्न किया, 'लल्ला! क्या करते हो।' इनका हाथ जोड़कर प्रार्थना करना, 'महाराज जी! रेलवे विभाग में नौकरी करता हूँ एवं रविवार को हमारी छुट्टी रहती है।'

आराध्यदेव ने कहा कि ठीक है लल्ला! आज तो तुम लोग जाओ एवं इस लल्ली से नित्य बतायी हुई क्रियायें कराते रहना। झांसी, तुम्हारा निवास स्थान कोई दूर नहीं है। प्रत्येक शनिवार को सायंकाल आ जाओ एवं रविवार को आश्रम पर रुक कर सोमवार को प्रात: काल ही निकलकर अपनी ड्यूटी पर समय से उपस्थित हो जाना। आदरणीय भाई जी ने सिर हिलाकर उस आज्ञा को स्वीकार किया एवं कहा कि महाराज जी! आने का प्रयत्न करूंगा। उसके बाद आराध्यदेव जी से आज्ञा लेकर ये ससुराल सकुशल दतिया अपने निवास स्थान पहुँच गया।

धीरे–धीरे इनकी पत्नी का रोग कम होता गया। चन्द महिनों में इनकी पत्नी पूर्ण रूपेण स्वस्थ हो गयीं। इनकी पत्नी के निरोग होने के साथ–साथ भाई जी की श्री गुरुदेव के चरणों में श्रद्धा का विकास होता गया एवं रोग निवारण के बाद, ये पूर्ण रूपेण श्रद्धावान बन गये थे। दो–तीन महिने तो ये अकेले प्रत्येक रविवार को सायं श्री सवांई धाम पर पहुँच जाते एवं सोमवार महाराज जी से प्रात: ही आज्ञा लेकर श्री सवांई धाम से अपनी ड्यूटी के समय झांसी पहुँच जाते थे। पत्नी के पूर्ण स्वस्थ होने के बाद इन्होंने कुछ समय पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान से सपत्नीक योग दीक्षा ग्रहण की एवं योग साधना आरम्भ की। दीक्षा के दो महिने बाद तक इन्हें योगदीक्षा से कोई आध्यात्मिक लाभ होते दिखलायी नहीं दिया। न तो प्रत्यक्ष रूप से और न अप्रत्यक्ष रूप से। श्री आदरणीय भाई जी सपत्नीक शनिवार को सायंकाल श्री सवांई आश्रम पहुँच गये। आश्रम के नियमानुसार सायंकालीन एवं प्रात: की आरती, जो गुरुदेव भगवान स्वयं करते थे; ये खड़े रहे। साथ ही आश्रम पर गुरु आदेशित कार्य भी किये। आदरणीय भाई जी बीड़ी पीने के शौकीन थे, यदि ये कहा जाय कि ये चेन स्मोकर थे, तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। दीक्षा के बाद कोई स्पष्ट कृपा न होने के कारण, आदरणीय भाई जी भोजनोपरान्त गुरुभवन के सामने के कदम पेड़ों के नीचे बैठकर इसी बात का गहन चिन्तन कर रहे थे एवं सोच रहे थे कि इससे तो अच्छी स्थिति (आध्यात्मिक स्थिति) हमारी योग दीक्षा से पूर्व ही थी। इन्हीं विचारों में से वे चेन स्मोकर विधि से बीड़ी पी रहे थे। आराध्य देव जी भी भोजन करके अपने गुरुभवन में विश्राम कर रहे थे। आराध्यदेव अपने कमरे से कब निकले

एवं कब इस भाई जी के पास पहुँच गये, इसका इन्हें आभास ही नहीं हुआ। आराध्यदेव ज्योंही इनके पास जाकर खड़े हुए, इन्होंने बीड़ी फेंक दिया एवं चरणस्पर्श कर उठने का प्रयास किया, आराध्यदेव जी ने इनकी दोनों आँखों में अपना दोनों हाथ लगाकर वैसे उठा लिया जैसे हम लोग तीन–चार वर्ष के बच्चे को उठाते हैं एवं वहीं से उठाये–उठाये लाकर गुफा में बैठा दिया। वैसे प्रत्यक्ष रूप से आदरणीय भाई जी का भारी भरकम शरीर मजे–मजाये पहलवान की तरह था एवं वजन भी श्री गुरुदेव की अपेक्षा दोगुना था।

श्री सिद्ध गुफा सवांई में महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के समझ बैठाते हुए श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'लल्ला! क्या सोच रहे हो, कुछ रुक कर; यही न कि गुरुदीक्षा से पूर्व योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण प्रातः दो बजे तुम्हें जगाकर झांसी की पहाड़ियों में लेकर जाते थे। अपना पीताम्बर एवं बांसुरी तुम्हें सम्भाल कर रखने को देकर, तुम्हें बैठने का आदेश देते थे एवं स्वयं सखियों एवं ग्वाल–बालाओं के साथ रासलीला करते थे एवं तुम देखकर आध्यात्मिक आनन्द लेते थे। भगवान श्रीकृष्ण सवेरा होने से पूर्व, तुम्हारे साथ चलकर तुम्हें घर तक पहुँचाते थे एवं तुमसे अपना पीताम्बर और बांसुरी लेकर अपने धाम को चले जाते थे। भगवान श्रीकृष्ण कई महिनों से तुम्हें अपना ये लीला चरित्र दिखा रहे थे। जानते हो वे ऐसा क्यों करते थे? महाप्रभु के स्वरूप की तरफ इशारा करते हुए, वे करूणासागर श्री प्रभु जी की आज्ञा से ही यह लीला चरित्र दिखाते थे। अब तक यह उनकी कृपा से, श्री प्रभु जी की आज्ञा से देखने को मिलता था। तुम श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने बैठकर अपने गुरुमंत्र का खूब जप करो। एक समय आयेगा, जब योगेश्वर श्रीकृष्ण सदैव तुम्हारे साथ रहकर तुम्हें दिखलायी देते रहेंगे एवं तुमसे बातचीत भी करेंगे।

अपनी मनोहारी मधुर मुस्कान से आदरणीय भाई जी को निहारते हुए, अनाथनाथ श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, 'लल्ला ईश्वरी प्रसाद! तुम्हें ऐसा लग रहा होगा कि हमारा तुम्हारा सम्बन्ध अब हुआ है। वास्तविकता इससे अलग है। पिछले जन्मों में मैं तुम्हारा गुरु था। इस जन्म के समय से ही मैं तुम्हारी गतिविधियाँ देख रहा हूँ। जब तुम बम्बई में लोकल ट्रेन में अत्यधिक भीड़ होने के कारण रेल के डिब्बे में नहीं चढ़ सके तो तुमने दो डिब्बों के बीच की ज्वाइन्ट पर खड़ा होकर यात्रा की थी। ट्रेन में इमरजेन्सी ब्रेक लगाने के कारण, ज्वाइन्ट से फिसल कर तुम ट्रेन के नीचे चले गये थे। उस समय अतुलनीय प्रकाश के मध्य तुमने अपने को प्लेटफार्म पर लेटा पाया। उस समय मृत्यु से तुम्हारी रक्षा किसने की थी, मैंने। तुम्हारा बम्बई से तबादला तुम्हारी इच्छा के विपरीत श्री प्रभु जी के संकल्प से हुआ। तुम्हारे पानी की तरह शराब पीने की आदत, माँसाहार की आदत एवं अन्य बुरी आदतें, तुम्हारे द्वारा न चाहते हुए भी छोड़नी पड़ी; ये सब अहैतुकी कृपा सागर श्री प्रभु जी के संकल्प से ही हुआ है।'

अपने जीवन की कुण्डली आराध्यदेव के मुखारविन्द से सुनकर आदरणीय भाई जी अवाक् रह गये एवं श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किये। आराध्यदेव ने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया एवं श्रीमुख से कहे, 'लल्ला! अपने गुरुमंत्र का चलते–फिरते, उठते–बैठते सदैव जप किया करो, साथ ही प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक का जाप अवश्य ही करना, नागा न होने पाये। यदि तुम ऐसा करने का प्रयास करोगे तो निहाल हो जाओगे।' आराध्यदेव के इन अमोघ आज्ञाओं को आदरणीय भाई जी ने प्रणाम की मुद्रा में हाथ जोड़कर शिरोधार्य किया एवं श्री प्रभु दरबार से सैकड़ों को जोड़ने का निमित्त बने। अब भाई जी का नश्वर शरीर नहीं रहा। अधोलिखित पंक्तियों के साथ यह कृपा प्रसंग समाप्त है:–

दुनियाँ में गुरु हजारों हैं, प्रभुरामलाल तेरा क्या कहना।
श्री रामलाल तेरा क्या कहना, गुरु चन्द मोहन तेरा क्या कहना।।

गुरुवर का सब कृपा चरित्र, आध्यात्म जगत की ख्याति है।
गुरु युग द्रष्टा, गुरु युग सृष्टा, प्रभु रामलाल की थाती है।।

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण
उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग–पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग

पढ़िये–
पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक–पत्र

गुरुजी कर दो बेड़ा पार

जगदीश राए बंसल 'अधम', उत्तम नगर, नई दिल्ली

(तर्ज समक्ष – मन डोले, तन डोले)

कार में आओ, जीप में आओ, करता हूँ इन्तजार....
गुरुजी, कर दो बेड़ा पार।। टेक।।
शरणां जब से मिला है गुरुजी, आरती पूजा करता हूँ।
भोर उठ कर नाम रटूं मैं, चरणों में शीश झुकाता हूँ।।
मन टिकै ना, ध्यान लगै ना, ये पैनी तलवार।।
गुरु जी.....
गली गली में छवि निहारूं, आप नहीं पधारे हो।
कर्म हीन मैं जन्म–जन्म का, फिर भी मुझे अपनाए हो।।
दे दो सहारा, मिले किनारा, नैया है मझधार।।
गुरु जी.....
पल पल मेरी उमरिया बीते, कब तक मैं इन्तजार करूं।
न जाने कब बज जाए घन्टी, फिर क्या उपचार करूं।।
यम राज बुलावे, अंगुली उठावे, क्या उत्तर दूँ सरकार।।
गुरु जी.....
हे योगेश्वर, हे हितेश्वर, दया की दृष्टि कर दिजो।
शरण आपकी पड़े हैं द्वारे, झोली हमारी भर दिजो।।
माफ करो, स्वीकार करो, सुन लो 'अधम' पुकार।।
गुरु जी.....

याद रखो

भगवान् ने कृपा करके हमें जो मानव शरीर प्रदान किया है, यह भगवान् के प्रेम को प्राप्त करने का शुभ अवसर है। यदि हमने यह अवसर खो दिया तो अपना सर्वस्व गवाँ दिया। अतएव बड़ी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। एक–एक श्वांस जो जा रहा है, वह हमें मृत्यु के निकट ले जा रहा है; शरीर के नाश का उपक्रम हो रहा है। जैसे–जैसे समय बीत रहा है, हम सोचते हैं– हम बड़े हो रहे हैं पर समय बीतने के साथ हम बड़े नहीं हो रहे हैं, हम छोटे हो रहे हैं; हमारी आयु बढ़ नहीं रही है, घट रही है। कब मृत्यु हो जाय, कुछ पता नहीं। अतएव मृत्यु के आने से पहले–पहले हमारा यह धर्म है, परम कर्तव्य है कि इस जगत् के समस्त झंझटों से अपने को मुक्त करके भगवान् में लग जायँ, मन को भगवान् में लगा दें। जहाँ मन भगवान् में फँसा कि जगत् से हटा। भगवान् में आसक्ति हुई कि जगत् से विरक्ति अपने–आप हो जायेगी। जहाँ प्रकाश आया कि अन्धकार मिटा– यह नियम है।

भगवान् में लगने का प्रयत्न हमें स्वयं करना होगा; दूसरा कोई हमारे लिये यह करेगा नहीं, कर सकता नहीं। यह अपने करने से होगा, अपनी इच्छा से होगा और होगा अवश्य, यदि हम करना चाहेंगे। निश्चित–निश्चित सिद्धान्त यह है कि भोग मिलने सहज नहीं हैं, पर भगवान् मिलने सहज हैं, यदि हम उन्हें प्राप्त करना चाहें। भक्त की चाह भगवान् में प्रतिफलित हो जाती है। शास्त्र की घोषणा है, भगवान् की घोषणा है– 'जो मेरा हो गया है, मैं उसका हो जाता हूँ।'

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

AUGUST 2010

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्रान्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना :-

विज्ञापनकर्ता से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर स्टेप आकार (स्मार्ट साइज) का विज्ञापन
2. लैटर कॉर्नर्स पर स्थान का आयोजन (नोमिनल)
3. मेल बाक्सों पर स्थान का आयोजन (नोमिनल) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेमेन्ट चार्ज रु. 500.00 प्रति पेनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर का कोई स्थान सुनिश्चित कोई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पास पर स्थान ऑडियोग्राम की कोई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति कोई प्रसारित होई का मूल्य रु. 400/
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन आपकी पोस्ट कार्ड के आगे भाग पर छपाई का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का लिखने मूल्य सहित 25 पैसे मात्र।

प्रेषण, कार्यालय :

सिद्धयोग

श्री सिद्धकृपा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एटावापुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/श्रीमती _____

_____

_____

_____

_____

संरक्षक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री स्वामी मोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दारालाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एटावापुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य म.(डॉ.) दारालाल शर्मा